उपवास-चिकित्सा।

—[illegible]—

लेखक

बाबू रामचन्द्र वर्मा
सम्पादक, नागरीप्रचारिणीपत्रिका और स० सम्पादक,
हिन्दी-शब्दसागर।

प्रकाशक,
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

संवत् १९७५ वि०।

हमारी अन्य पुस्तकें ।

[illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ... ... [illegible]

[illegible] ... [illegible]

[illegible] ... [illegible]

[illegible] ([illegible]) ... [illegible]

[illegible] ... [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] कार्यालय,

[illegible]

विषय-सूची ।

. ٩٤٩

वक्तव्य ।

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकी इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है। पर इस इच्छाकी पूर्ति और प्रयत्नकी सफलता बहुत ही थोड़े लोगोंके मामलेमें होती है। दिन पर दिन रोगों और रोगियोंकी संख्या इतनी बढ़ती जाती है कि पूर्ण रूपसे स्वस्थ मनुष्य ढूंढ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहांतक कि बहुत पहले ही इस देशमें 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। शरीर स्वयं कभी व्याधि-मंदिर नहीं होता, उसकी प्रकृति सदा नीरोग होने या रहनेकी ओर होती है; पर हम आहार-विहार आदिके प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करके स्वयं उसे व्याधि-मन्दिर बना देते हैं। प्राणि-मात्रमें सर्वश्रेष्ठ गिने जानेवाले मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है। इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकलकी यह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायतासे व्याधियों शरीरसे बाहर निकाल देनेका प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीरमें अपने आपको स्वयं नीरोग कर लेनेकी सबसे बड़ी शक्ति विद्यमान हो, उस तरह तरहके विषोंके प्रयोगसे नीरोग करनेका प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें सबसे अधिक आश्चर्य और दुःखकी बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियोंमें जो प्रणाली सबसे अधिक दूषित और हानिकारक है, सारे संसारमें वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य एलो-पैथीसे है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य औषधियोंको बलपूर्वक तीव्र, उग्र और भयंकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनको खानेमें थोड़ी [illegible] होने पर भी बहुत बड़े अनर्थकर सम्भावना होती है। इस पुस्तकमें [illegible] सम्बन्धमें [illegible] सम्बन्धमें [illegible] और भी [illegible] है।

काम हमारे शरीरके अंग-प्रत्यंगको पुष्ट करना है, वह हमारे शरीरके अंग प्रत्यंगके [illegible] भी अवश्य ही बढ़ाता जायगा, क्योंकि 'वृद्धि और पुष्टि करना' ही उसका स्वाभाविक धर्म है। भोजन करने रहनेके अतिरिक्त जहाँ अंगचेष्टा आदिकी सहायतासे उसके कार्योंमें और भी शीघ्र बाधा जाता है, वहाँ तो [illegible] ही है। आयुर्वेदमें 'लंघनं परमौषधम्' इसी लिए कहा गया है कि उससे शरीरके अपनी स्वाभाविक और आरोग्य स्थिति तक पहुँचनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। प्रकृत रोगमें उपवासकी सहायतासे जितनी जल्दी सुधार मिलता है उतनी जल्दी और किसी उपायसे नहीं मिल सकता। और इस पुस्तकमें इसी उपवासके गुण, प्रकार और विधान आदि बतलाये गये हैं।

इस पुस्तकमें जो बातें बतलाई गई हैं वे इसी लिए बहुत अधिक हृदयग्राही हैं कि वे प्राकृतिक, सरल और युक्ति युक्त हैं। हमारा विश्वास है कि जो विद्यार्थी [illegible] होकर इसमें बतलाई हुई बातों पर ध्यान देगा वह बहुत ही सहजमें उन्हें सुविधा [illegible] करके उनका समाधान और पक्षपाती बन जायगा; और [illegible] जीवनके [illegible] स्वास्थ्यसम्पन्न रहने लगेगा।

[illegible] अनेक देशोंमें बहुत से उपवास-चिकित्सालय खुल गये हैं, जिनमें हजारों बीमार रोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हींमें एक चिकित्सालय अत्यन्त और [illegible] बातें [illegible] भी है। [illegible] चिकित्सालय ही नहीं है, बल्कि उपवास-चिकित्सासम्बन्धी [illegible] के लिए [illegible] भी है। इस [illegible] पहले [illegible] [illegible] है। [illegible] जिन्होंने [illegible] उपवास-चिकित्सा [illegible] है। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] किया है, जिनके [illegible] [illegible] [illegible] हैं। प्रकृत पुस्तक [illegible] Fasting, Hydropathy and Exercise [illegible] पुस्तक [illegible] 'आरोग्य' [illegible] पुस्तकों [illegible] है। [illegible]

[illegible]

उपकार-चिकित्सा ।

हमारे शरीरका संगठन ।

मनुष्य मनुष्य, पशु और पक्षी तक कि जीवमात्रका शरीर इस प्रकारका हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकारके बाहरी या भीतरी पदार्थके कारण दोष उत्पन्न होने लगे तो वह शरीर—यदि उसके साथ किसी तरहका बल-प्रयोग न किया जाय और उसे स्वाभाविक स्थितिमें रहने दिया जाय तो—उस दोषको आप ही आप दूर कर देगा । शरीर यथासाध्य किसी अपवित्र और हानिकारक वस्तुको अपने अंदर नहीं रहने देगा । उसका संगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहेगा । एक तो स्वयं हमारे शरीरमें ही हरदम बहुतसे अनिष्टकारी पदार्थ और तरह तरहके विष उत्पन्न होते रहते हैं; दूसरे हम लोगोंकी दुर्संगता और दुष्कर्म आदिके कारण उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है । यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थोंको बाहर निकालनेका काम थोड़ी देरके लिए भी बंद कर दे तो जीवन असंभव हो जाय । सीख पसीने, मल, मूत्र थूक और छींक आदिके रूपमें शरीरके भिन्न भिन्न भागोंसे सदा हमारे शरीरमें तरह तरहके विष निकलते रहते हैं । हमारा शरीर ये काम अपने [illegible] स्वयं करता है [illegible] हमारे [illegible] कर्तव्य होना चाहिए कि [illegible] अन्याय न करें उसके [illegible]

[illegible] एक घंटी बजती रहती है जो छापेके समय एक लाइन [illegible] ही [illegible] आगे आगे बढ़ती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला [illegible] है और [illegible] नई लाइन प्रारंभ करता है। इसी प्रकार और भी बहुत [illegible] पुराने बने रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकतापूर्ति [illegible] हुए [illegible] हैं। हमारे शरीरकी बनावट भी बिल्कुल [illegible] ही [illegible], बल्कि इससे भी अधिक पूर्ण और अच्छी है। हमारा स्नायु-[illegible] [illegible] कोई [illegible] देखते ही एक [illegible] हमें [illegible] है [illegible] हमें केवल कोई [illegible] ही सूचना नहीं देता बल्कि हमारे [illegible] का ज्ञान भी हमें करा देता है। ज्योंही हमारे भोजन का [illegible] प्रकारकी [illegible] या त्रुटि होती है, अथवा हमारी [illegible], [illegible] प्रकारकी [illegible] होता है, त्योंही वह एक विशेष प्रकारसे [illegible] हमें इसकी [illegible] भी वह [illegible] हैं—हमें इसकी सूचना दे देता है, केवल सूचना ही [illegible] वह [illegible] के लिए आवश्यक साधन भी [illegible] देता है। [illegible] होती हैं, [illegible] सूचना दे दिया करता है। बहुत [illegible] का [illegible] हमें सूचना [illegible] है। और इसमें [illegible] प्रकारकी [illegible] हो तो हमें सूचना [illegible] है। [illegible] सूचना है जो हमें [illegible] मिलती है। [illegible] हमारी [illegible] आता है तो हमारा [illegible] हमारे [illegible] है। [illegible] है [illegible] है, [illegible] और [illegible]

शरीरकी भीतरी क्रिया ।

शरीरविज्ञानवेत्ताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हर दम एक प्रकारका विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणतः लोगोंसे यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसी सर्वथा कोई वास्तविक कारण नहीं है। बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमें छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अंगरेजीमें Cells कहते हैं। ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियासे आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त-संचालनकी सहायतासे उनके स्थान पर नये कोश भी बनते जाते हैं। इस प्रकार हरएक शरीरमें पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं। यह क्रिया जीवशरीरोंके अतिरिक्त वनस्पतियोंमें भी होती रहती है। अंगरेजीमें परिवर्तनकी इस क्रियाको Metabolism कहते हैं। हमारे यहाँ प्राचीन वैद्योंने भी इसीसे मिलता जुलता एक प्रकारका सिद्धान्त या जिसे क्षणिकवाद या क्षणभंग कहते हैं। इस मतके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी अवस्था या स्थितिमें प्रतिक्षण बराबर परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। पुराने और नये कोशोंका जो अंश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है। यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है। हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अंशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दें। उस दूषित अंशके बाहर निकलनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिससे वह अंश पसीनेके रूपमें निकलता है। इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेड़, गुर्दे, [illegible] और अँतड़ियाँ आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अंश निकलता रहता है [illegible] है। यह दूषित अंश [illegible]

शरीरमें इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वासके द्वारा बड़े परिमाणमें उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल-मूत्र और खखार आदिके रूपमें हमारे शरीरसे बहुतसे विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारोंका निकलना बंद हो जाय और वे शरीरके अंदर ही रह जायँ तो तुरंत ही हमारी मृत्यु होनेमें कोई सन्देह न रह जाय।

वैज्ञानिकोंका यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीरके कोश या cells अधिक परिमाणमें नष्ट होते हैं, पर नये कोश अधिक परिमाणमें उसी समय बनते हैं, जब कि हम सब प्रकारके शारीरिक श्रम छोड़कर आराम करते हैं। अर्थात् शरीरकी आरोग्यताके लिए कामकाज, परिश्रम और व्यायाम आदिकी जितनी आवश्यकता है, शरीरको सब प्रकारके परिश्रमोंसे छुट्टी देकर सुखी बनानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीरको आराम न देंगे और उसे हरदम काममें लगाये रहेंगे तो उसमें नवीन शक्ति नवीन जीवनका संचार न होगा। फल यह होगा कि हम दिनपर दिन दुर्बल और रोगी होते जायँगे। जो लोग अपने शारीरिक बलके भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी आराम नहीं करते वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहाँ तक कि प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। शरीरको आराम देनेका सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्यके शरीरके कोश सोनेमें ही सबसे अधिक परिमाणमें बनते हैं। आजकल अवस्थामें परिश्रम करनेके कारण जो पुराने नष्ट होकर विकार रूप धारण कर करते हैं उनका शमन ही होता है। बहुत अधिक कसरत करनेवालों या दौड़नेवालोंको [illegible] लोग दम बाँधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौड़ते हैं उनके [illegible] एक प्रकारका दर्द उत्पन्न हो जाता है। [illegible] नामक एक [illegible] ने इस दर्दका कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम दौड़ने आदिके कारण [illegible] इतना अधिक दूषित अंश रक्तमें मिल [illegible] कि [illegible] द्वारा बाहर निकलनेमें असमर्थ हो जाते हैं। [illegible] [illegible] है और उसके [illegible] देखने [illegible] बहुत [illegible] है। [illegible] इस परिश्रम

करनेवाले या दौड़नेवालेको थोड़ी देरतक [illegible]
कुछ कम हो जायगा और उसका दर्द [illegible]
उसके दूषित अंश बाहर निकालनेवाले [illegible]
अपना कार्य्य अच्छी तरह करने लगे हैं। [illegible]
लते ही उसका दर्द भी कम हो जाता है। [illegible]
हो जाती है कि किसी प्रकारका अधिक [illegible]
भिन्न अंशोंमें जो दोष या विकार उत्पन्न हुए [illegible]
अवयवों या अंगोंको आराम देना [illegible]
काम न लेना चाहिए। यह सिद्धान्त [illegible]
समान-रूपसे प्रयुक्त होता है। मनुष्य, [illegible]
आदितक आराम चाहते और करते हैं। [illegible]
काम लिया जाता है, वह बहुत [illegible]
बीचमें अवकाश मिलता रहता है, वह [illegible]
कार्य्य उत्तमतापूर्वक करती है।

नियमोंका [illegible]

मनुष्य है तो जीव-मात्रमें [illegible]
रण बहुधा पशुओंके [illegible]
उन्नति और सभ्यताके जमानेमें [illegible]
है। हम लोग औरोंके साथ [illegible]
सबसे बड़ा अन्याय स्वयं अपने [illegible]
अन्याय इतना पुराना और बड़ा [illegible]
जानेके कारण हम उसे अन्याय [illegible]
देखते हैं और न हमें उनकी [illegible]
[illegible] बराबर [illegible]
[illegible] पर अपने [illegible]
[illegible]

विवेक-युक्त कहलाता है, वही कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वयं शाकाहारी जीवोंकी श्रेणीका है अथवा मांसाहारी जीवोंकी श्रेणीका। उसे शराब, कबाब, माँस, मछली, अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिए, वह बड़ी प्रसन्नतासे खा लेगा। यही नहीं बल्कि वह स्वयं उन सब पदार्थोंको पानेका प्रयत्न करेगा और सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रामें वह उन सब पदार्थोंको उदरस्थ कर सकेगा, उतनी अधिक मात्रा लेनेमें वह अपनी ओरसे कोई बात उठा न रखेगा! लोग कहते हैं कि पशुओंमें एक प्रकारका सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते। बहुत ठीक, पर क्या वह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्योंमें नहीं है? है, और अवश्य है। पर मनुष्य जान बूझकर उस ज्ञानका गला घोंटता है और स्वयं बलपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है। छोटे छोटे बच्चोंको मांस देखकर स्वाभाविक घृणा होती है, पर माता-पिता और घरके दूसरे लोग उसे तरह तरहसे बहका कर मांस खानेके लिए प्रवृत्त करते हैं। यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या है? बड़े बड़े शराबी भी शराब पीनेके समय बेतरह नाक सिकोड़ते और मुँह बिचकाते हैं। क्यों? इसी लिए कि वे अपने सहज-ज्ञानकी हत्या करते हैं, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध आचरण करते हैं। सुरती खाने, भाँग, अफीम, गाँजा आदि पीनेके लिए लोगोंको क्यों महीनों थोड़ी थोड़ी मात्रा बढ़ा कर अभ्यास करना पड़ता है? इसी लिए कि ये सब पदार्थ स्वभावतः उनके खानेके योग्य नहीं होते। इन सबके व्यवहारके लिए मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रवृत्तिमें परिवर्तन करना पड़ता है।

मनुष्यका यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रुक जाता बल्कि आगे चलकर वह और भी विकराल रूप धारण करता है। एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें अपनी आवश्यकता और शक्तिसे कहीं अधिक खा लेता है। आपको भूख तो बिलकुल नहीं है, पर आपके मित्र आये। बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है, आप कुछ न कुछ अवश्य खा लें। आप आनेको सोचकर समझकर खाने बैठ जाते हैं। आप घरसे तो भरपेट भोजन करके चलते हैं, पर रास्तेमें कोई बढ़िया चीज बिकती हुई देखकर ललचा उठते हैं और उसके खानेका मौका ढूँढने लगते हैं। किसी मित्रके यहाँ निम-

[illegible] है कि—"[illegible] पुनः पुनः।" [illegible] और [illegible], [illegible] और [illegible] ! [illegible] है। [illegible] है और [illegible] है। [illegible] हैं, [illegible] हैं और [illegible] हैं। [illegible] और [illegible] हैं और [illegible] है।

[illegible] रोज २४ [illegible] पाँच पाँच बार भोजन करते हैं और [illegible] है, [illegible] है। [illegible] और [illegible] और [illegible] हैं [illegible] है। [illegible] हैं [illegible] है। [illegible]

उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वे मनमें समझती हैं कि, हमने अपने बाल-बच्चोंका बड़ा उपकार किया; और यही उपकार जब [illegible] प्रकट होता है, बच्चोंको ज्वर या इसी प्रकारका कोई और रोग हो जाता है तब लोग उसका सहज उपचार करने और उसको स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देनेके बदले उसके ऊपर एक नया उपकार आरंभ कर देते हैं। औषधके रूपमें तरह तरहके विष उसके पेटमें उतारे जाते हैं, मानो 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्त पर उन्हें अच्छा करनेका प्रयत्न किया जाता है।

अधिक भोजनसे हानियाँ।

अधिक भोजनसे होनेवाली हानियाँ इतनी अधिक हैं कि, उनका पूरा पूरा वर्णन करना असंभव है। इस सिद्धान्तको प्रायः सभी बड़े बड़े डाक्टर मानते हैं। अभी हालमें एक बड़े भारी डाक्टरने कहा था कि, आजकल [illegible] [illegible] हुआ करती हैं उनके तृतीयांश [illegible] बहुत आवश्यक [illegible] सकता है। यही नहीं अधिक भोजनके परिणाम-स्वरूप [illegible] [illegible] की इसी ही कमी हो जाती है। जो लोग इस बातको बिल्कुल नहीं समझते हैं, उन्हें [illegible] है कि [illegible] बात यह है कि हम [illegible] जितना भोजन पचा सकते हैं उससे कहीं अधिक उदरमें डाल देते हैं। जो [illegible] जाता है उससे [illegible] बिना पचे [illegible] [illegible] है, [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible]

आवश्यकता नहीं है। पैरोंमें और पेशाबकी शिकायत उत्पन्न होती है, सिरमें दर्द आरम्भ होता है और आँखोंमें बुखारकी नौबत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थोंको हमारे शरीरसे बाहर निकालनेका प्रयत्न है। बुखार बिगड़कर जो भयंकर रूप धारण करता है, उससे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजनका बचाहुआ दूषित अंश बाहर निकलनेके लिए हमारे सारे शरीरमें चक्कर लगाया करता है और जिस अवयवमें पहुँचता है उसमें एक न एक विकार उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क आदि सभी अवयव इस दूषित अंशके शिकार बनते हैं और मनुष्यको गठिया, बवासीर, भगंदर, फोड़े, कण्ठमाला और तरह तरहके बुखार अथवा इसी प्रकारके अन्य रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अंश कम हुए तो पहले इन रोगोंके कृमि मात्र ही उत्पन्न होते हैं, जिनको आगे चलकर बढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सब कारणोंसे एक बड़े विद्वानने बहुत ठीक कहा है कि—" अकालमें अन्नके अभावके कारण उतने लोग नहीं मरते, जितने सुकालमें अधिक अन्न खानेके कारण, तरह तरहके रोगोंसे, मर जाते हैं!"

अधिक भोजन करनेके कारण होनेवाली जो हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हें बहुत से साधारण बुद्धिके लोग भी जानते हैं। बड़े बड़े डाक्टरोंके मतसे अधिक भोजनके कारण मनुष्यके शरीर पर बहुत बोझ पड़ता है और उसे भोजनके अनावश्यक अंशोंको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए बड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। अधिक भोजनसे शरीर पर चार प्रकारके बुरे प्रभाव पड़ते हैं—

(१) अधिक भोजनसे रक्त अस्वच्छ और [illegible] हो जाता है, जिससे बहुत [illegible] उत्पन्न होने [illegible] हो जाता है

(२) [illegible] उत्पन्न होता है, अधिक भोजन [illegible] और [illegible] हो जाता है

(३) [illegible], Nature [illegible] अधिक भोजन करनेसे [illegible] है और उनका [illegible] अन्न

या विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यके शरीरका बल नहीं बढ़ता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

(४) बिना पचे हुए भोजनका जो दूषित अंश बचा रहता है उसमेंसे विष निकल कर पेट और भेजेमें फैलता है, जिससे मनुष्यकी आरोग्यताका बहुत जल्दी जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकतासे अधिक भोजनके साथ जितने अनर्थ और अपकार सम्मिलित हैं उतने कदाचित् ही और किसी दूसरे काममें सम्मिलित होंगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मनमें बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब हमारी बल-वृद्धिमें सहायक होता है, उसमेंका कोई अंश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बातका विचार किये कि हमें इस समय भोजन करनेकी आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचानेके लिए तैयार है या नहीं, दिनमें कमसे कम तीन बार भूख उठकर भोजन कर लेते हैं। इसी भ्रमपूर्ण विचारके कारण लोगोंकी यहाँ तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक बारका भोजन भी बीचमें छोड़ दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा हमारे सिरमें दर्द होने लगेगा, यहाँ तक कि हम चल फिर भी न सकेंगे। हम यदि दिनमें दो बार भोजनके करनेकी आदत डालें तो कुछ दिनोंमें ही हर बार भोजनके निश्चित समय पर हमें एक प्रकारकी भूख लग आया करेगी; पर वह कदापि सच्ची भूख नहीं होती, वह बनावटी या कृत्रिम होती है। हम लोग उसी बनावटी भूखके गुलाम बन जाते हैं, इतने गुलाम बन जाते हैं कि हमसे उससे पीछा छुड़ानेका साहस ही नहीं रह जाता। आप एक बार भोजन न कीजिए, उससे आपको जो थोड़ा बहुत कष्ट होगा वह तो होगा ही, पर यदि यह बात आपके दोस्तोंको मालूम हो गई तो उन्हें आपका चेहरा 'बिलकुल उदास सूखा हुआ और पीला' दिखाई पड़ने लगेगा। क्यों? इसी लिए कि वे स्वयं भूखके गुलाम होते हैं। अब आप अपनी इच्छासे न सही तो कमसे कम उन दोस्तोंकी खातिर ही थोड़ा बहुत भोजन अवश्य कर लेंगे। पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा उसका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता।

इस गुलामीसे बचनेका केवल यही उपाय है कि आप अपने मनको दृढ़ करें। सबसे पहले आपको इस बातका दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप बनावटी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

रोगमें भोजन।

मनुष्यके शरीरमें जितने रोग हैं, उनमें बहुत अधिक संख्या ऐसे ही रोगोंकी है जिनका मूल कारण भोजनसम्बन्धी किसी न किसी प्रकारका दोष ही होता है, पर विलक्षणता तो यह है कि उन रोगोंमें भी रोगीको पूर्ववत् भोजन देकर उसके रोगकी वृद्धि की जाती है—व्याधिका मूल कारण और बढ़ाया जाता है। रोगकी सहायता इसी भोजनके परिमित नहीं रहती बल्कि आगे चल कर और भी सहायताकी हो जाती है। रोगीको औषधियोंके नामसे बारह तरहके सुंदियाँ दिए जाते हैं। ये दवाएँ बहुत रोगको दबा तो देते हैं पर उसके मूल कारणको [illegible] नहीं कर सकते। बहुतसे अवसरों पर तो यह भी देखा गया है कि [illegible] रोगोंकी वृद्धि होती है। [illegible] दिन पुराने रोगोंकी वृद्धि और नए नए रोगोंकी उत्पत्तिमें जितनी सहायता अधिक भोजन और औषधि-[illegible] दिए जाते हैं [illegible] और किसी दूसरी बातसे नहीं मिलती।

[illegible] बहुत [illegible] होता है, [illegible] भोजनकी आवश्यकता नहीं होती और [illegible] अधिक दिनतक जाता है, [illegible] भोजन [illegible] और चिकित्सक [illegible] इतना [illegible] कि [illegible] मुख [illegible] शरीर [illegible] मनोवृत्ति [illegible] उपवास [illegible] रोगीको [illegible] कुछ न कुछ [illegible] देते हैं। [illegible] यह [illegible] नहीं [illegible] कि [illegible] और [illegible] भोजन [illegible] इच्छा न होनेपर [illegible] है। [illegible] यह है कि [illegible] और कुछ [illegible] है। [illegible] वैद्यों और [illegible] मूल [illegible] हैं और [illegible] [illegible] है [illegible] बहुत [illegible] [illegible] है [illegible] है [illegible] है [illegible] है [illegible]

[illegible]

[illegible]

चाहिए। मनुष्यके शरीरको जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है यदि उसे वे तत्त्व न मिलें और दूसरे तत्त्व मिलें तो भी वह अवश्य मर जायगा; क्यों कि उसकी आवश्यकताएँ दूसरे तत्त्वोंसे पूरी नहीं हो सकेंगी; आवश्यक तत्त्वोंसे भिन्न चाहे जितने पदार्थ मनुष्यको मिलें पर उसका काम उनसे न चलेगा और वह अवश्य मर जायगा। मनुष्यका भूखों मरना उसी समय कहा जा सकता है जब कि उसे आवश्यक भूख लगे और उसे भोजन न मिले। भूखों मरनेवालोंकी दूसरी सबसे अच्छी पहचान यह है कि, मनुष्यका पिंजर मात्र रह जाता है। यदि कोई रोगी बिना इलाजका अवस्थाके पहुँचे ही बीचमें मर जाय तो उसकी मृत्युका कारण [illegible] होगा।

रोग और चिकित्सा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आजकल डाक्टरोंके निदानकी बड़ी तारीफ सुनी जाती है। पर क्या कोई डाक्टर किसी रोगको पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है? केवल निदानसे ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सकका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाय; पर जब उसे रोगका मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उन्हें दूर किस प्रकार कर सकेगा? न्यूयार्कके एक बहुत बड़े डाक्टरी कालेजके अध्यापक डा० आस्टिन फ्लिंट एम. डी. एल एल. डी. ने अपने एक ग्रन्थमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर ली है कि रोग और आरोग्यताकी व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टरका मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें हम लोगोंका कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कमसे कम मेरा यह विश्वास है कि हम लोगोंको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीर पर औषधियोंका क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बड़े बड़े डाक्टरोंके कथनोंसे यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकलका चिकित्सक-वर्ग रोगोंके वास्तविक स्वरूप और कारणों आदिसे एकदम अनभिज्ञ है। नये डाक्टर जो अभी हालमें कालेजसे निकले हों और जिन्हें किसी प्रकारका अनुभव न हो, भले ही इस बातका गर्व कर सकते हैं कि हम रोगोंके विषयमें सब बातें जानते और उन्हें तुरंत दूर कर सकते हैं पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बातें कभी न कहेगा। एक बड़े भारी प्रोफेसरका मत है कि ज्यों ज्यों डाक्टरका अनुभव बढ़ता जायगा, त्यों त्यों वह औषधियोंकी निरर्थकता और प्रकृतिकी प्रधानता समझता जायगा। डाक्टर लोग जितने ही अधिक रोगों और रोगियोंको देखते हैं, औषधियोंके गुणों परसे उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकलका चिकित्सा-विज्ञान जब रोगकी वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगोंके विषयमें हम स्वयं कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्थामें यह मानना पड़ेगा कि आजकलकी चिकित्साप्रणाली बिल्कुल अटकल-पच्चू है और डाक्टर लोग अपने रोगियों पर औषधियोंकी केवल परीक्षा ही करते हैं। रोगों अधिक सम्बन्धमें आजकल जो नये नये आविष्कार होते हैं वे सब भ्रम और अनुमानके लक्षण माने जाते हैं, पर

वे ही आविष्कार डाक्टरोंको और भी अधिक भ्रममें डालते हैं—उन्हें ठीक मार्गसे और भी दूर ले जाते हैं।

समस्त संसारके सब प्रकारके चिकित्सक दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। एक भागमें तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियों पर चिकित्सा करनेवाले डाक्टर, मिस्मेरिज्म या बिजलीकी सहायतासे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक, यूनानी और मिसरी हकीम, वैद्य तथा सब प्रकारके दूसरे चिकित्सक आजाते हैं और दूसरे भागमें हम उन चिकित्सकोंको रखते हैं जिनके सिद्धान्त उक्त सब प्रकारके चिकित्सकोंसे एक दम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायोंसे ही रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। रोगोंकी उत्पत्ति और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें इन दोनों श्रेणियोंके चिकित्सकोंका सिद्धान्त एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न है। पहले वर्गके चिकित्सकोंका तो विश्वास है कि रोग हमारे बड़े भारी शत्रु हैं जो हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अंगों पर आधिपत्य करके हमारी शक्तियोंसे युद्ध करते हैं; इन अदृश्य शत्रुओंके लिए हमारी ओषधियाँ, गोलियाँ और गोलोंका काम करती हैं। पर दूसरे वर्गका कहना है कि सब प्रकारके रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेमें निश्चयसे सहायक होते हैं। जब हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब हमारे अन्दर उसकी सूचना देने और उसे सुधारनेके लिए उन लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीरका संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होनेवाले दोषोंको स्वयं ही दूर करता रहता है। जब हमारे शरीरकी स्वाभाविक स्थितिमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था होती है तब उसकी सूचना हमें रोगके रूपमें मिलती है। अच्छे चिकित्सकका यही कर्तव्य है कि वह शरीरको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें ले आवे। शरीरके स्वाभाविक स्थितिमें आते ही रोग आपसे आप नष्ट हो जायगा और रोगी चंगा हो जायगा। दोनों वर्गोंकी चिकित्साप्रणालियोंमें अंतर यह है कि एक वर्ग तो रोगोंके [illegible] प्रयत्न करता है और दूसरा वर्ग रोगीको अच्छा करनेके [illegible]। एक ही रोगको दूर करनेके लिए कुछ विशिष्ट ओषधियाँ दी जाती हैं इस [illegible] कि रोग पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। पर प्राकृतिक चिकित्सक [illegible] है कि रोगको छेड़ कर उसके कारणको नाश किया जाय [illegible] रोग अच्छा कर सकता है जब। ओषधि-

योंसे रोगोंको दबाने, उनका मुकाबला करने और उन्हें मार भगानेका प्रयत्न किया जाता है। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दबाना या नष्ट करना न चाहिए, बल्कि उनके सामने सुविधा उत्पन्न करके स्वस्थ और नीरोग होजाना चाहिए। यह उद्देश्य बिना किसी प्रकारकी औषधियोंके ही बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक बड़े डाक्टरका मत है कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके साधन हमारे शरीरके बाहर किसी डिबिया या बोतलमें बन्द हैं, वह साधन, वह शक्ति तो स्वयं हमारे शरीरके अन्दर है। साथ ही यह निश्चय देखने है कि अन्य आसंग आप मरते हैं, पर तो भी वे प्रकृतिके इस गुणको नहीं समझते। * मनुष्य को चाहे किसी प्रकारका रोग हो, उसे किसी प्रकारकी औषधिकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसका रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि प्रकृति हमें जिस स्थितिपर पहुँचाना चाहती हो, हम स्वयं उस स्थितिपर पहुँच जायँ। हमें यथा करनेका काम हमारी जीवन-शक्ति स्वयं कर सकती।

जितने, पतन अथवा इसी प्रकारके और कारणोंसे जो चोटें आदि लगती हैं, उनकी छानबीन रोगोंके दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई विजातीय या गन्दा पदार्थ बाहरसे किसी प्रकार हमारे शरीरमें पहुँच जाय या दूसरे यह कि वह स्वयं हमारे शरीरमें पड़े हुए दूषित या विजातीय पदार्थोंके कारण उत्पन्न हो। केवल इन्हींमें एक कारण हमारे शरीरके कामोंमें रुकावट पड़ती है।

[illegible]

टोंको दूर करने और अपने कामोंमें सुविधा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करती है। क्या इस प्रयत्नको जो सब प्रकारसे हमारे लिए हितकारी है, जो हमारे जीवनको बनाये रखनेके लिए होता है, जो हमें शरीरके भीतरी शत्रुओंसे बचाता है, तरह तरहके जहरीले तेजाबों, शराब मिली हुई औषधियों, जुल्मों और मक्कारों आदिसे रोकने या दबाने आदिकी आवश्यकता है ?

जो बात मनुष्यजातिकी समझमें सैकड़ों पीढ़ियोंसे दृढ़तापूर्वक जमी हुई है, वह सहजमें या तुरंत ही दूर नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरों पर लोगोंमें बहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है। जिस प्रकार संगीत, काव्य या किसी और ललित-कलाका पूरा पूरा आनन्द सब लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषय पर पक्षपात छोड़कर विचार करने और सत्यका पक्ष ग्रहण करनेके लिए भी सब लोग तैयार नहीं हो सकते। बहुधा बातोंकी सत्यताका विश्वास क्रमशः ही होता है, एकदमसे नहीं हो सकता। साथ ही इस प्रकारके गूढ़ विषय केवल समझानेसे ही मनमें नहीं बैठ सकते, मनुष्यको उनके अनुकूल आचरण करते करते जब उसका अच्छी तरह अभ्यास पड़ जाता है, तभी वह उसकी उपयोगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए विचारवान् पाठकोंको इस विषय पर पहले तो अच्छी तरह मनन करना चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभव करना चाहिए। यदि पाठक पक्षपात छोड़कर इस स्थलपर बतलाई हुई बातोंका विचार करेंगे तो हमें आशा है कि उनकी उपयोगिता अवश्य ही उनकी समझमें आ जायगी।

चिकित्साके दोष ।

यह [illegible] बतला आ चुके हैं कि अनेक कारणोंसे हमारे शरीरमें [illegible] दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषोंका दूर करनेके लिए हमारी [illegible] स्वयं प्रयत्न करने लगती है और उस प्रयत्नको हम 'रोग' कहते हैं। दोषोंके दूर करनेके [illegible] रहता है। हमें अब उसके लक्षण [illegible] है कि [illegible]

ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रहना और हमारे प्राणोंकी रक्षा करना है। जो विष हमारे शरीरमें रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषोंको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम रोग है। बेलेस नामक एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टरने हैजेके सम्बन्धमें एक बड़ी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें आपने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगोंको संक्रामक समझ कर उनकी संक्रामकता दूर करनेके लिए आजकल औषधियों आदिके द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रयत्न रोगोंको फैलाने और बहुत अधिक मनुष्योंके प्राण लेनेके कारण होते हैं। जिन दिनों संक्रामकता दूर करनेके लिए इतनी अधिक औषधियोंका प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वयं रोग ही बहुतसे मनुष्योंके प्राण बचा लेता था।

पुराने रोगोंकी जितनी चिकित्सा-प्रणालियां हैं उनमेंसे बहुधा ऐसी ही हैं जिनमें रोगके जारी चिह्नोंको ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानो उस क्रियामें बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीरको शुद्ध करनेके लिए होती है। जब हम औषधियों आदिसे उस क्रियाको रोकने या दबाने आदिका प्रयत्न करते हैं तब उस क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है जो हमारे शरीरके भीतर हम रोग न करनेके लिए अपने-ही-आप प्राकृतिक कारणोंसे होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तवमें हमारी उतनी ही हानि होती है। हम दो एक दिन बुखार आने और किसी औषधिकी एक या दो मात्रासे ही हमारा बुखार रुक जाय तो हम यही समझते हैं कि उस औषधिसे हमारा बड़ा उपकार हुआ। पर वास्तवमें उससे हमारा अपकार ही है। हमारे शरीरके [illegible] बहुत निकलना चाहता था वह उस औषधिके कारण रुक [illegible] है। यदि वह [illegible] ही होगी, [illegible]

[illegible]

[illegible] दोष दूर करनेमें पूरा पूरा सुभीता हो। वास्तवमें रोगकी उत्पत्ति उन्हीं विषोंसे होता है जो हमारे शरीरमें एकत्र हो जाते हैं। इन विषोंके एकत्र हो जानेकी सूचना हमें समय समय पर सिरदर्द कब्जियत अथवा इसी प्रकारकी और शिकायतोंसे होती है। बहुधा लोग इस लिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं, बल्कि वे इसलिए मरते हैं कि उनके शारीरिक संगठनको इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषोंको निकाल बाहर करे। इस विषयमें बहुत बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगोंके वास्तविक कारणों पर किसीका ध्यान जाता ही नहीं, सब लोग उनके बाहरी चिह्नोंको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मरण और रोग देखनेमें भले ही आकस्मिक जान पड़े पर वे वास्तवमें आकस्मिक नहीं होते। इन दोनोंके मूल कारणोंकी बहुत बड़ी शृंखला होती है और उस शृंखलाकी अंतिम कड़ी रोग या मृत्युके रूपमें प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोगके वास्तवमें नष्ट होनेके लक्षण क्या हैं और उनके कारणोंका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्यको कटिया हो और उसे तरह तरहके तेल मले जायँ तो रोगीके अंग खुल जाते हैं। उस दशामें यह क्यों न मान लिया जाय कि रोगका वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगीको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देने अथवा उसे खुली हवामें रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्साके इसी प्रकारके दूसरे उपायोंसे वह नीरोग हो जाय तो इसी बातका क्या प्रमाण है कि रोगके वास्तविक कारणका ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि औषधियोंसे रोगके चिह्न मात्र दब जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्साके विषयमें भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे केवल लक्षण मात्र दबे हैं और रोगका मूल कारण शरीरमें बना हुआ है।

[illegible] विचार करनेसे इस प्रकार उत्तर सहजमें ही निकल आता है। [illegible] स्वीकार करें और यह न करें [illegible] इसमें सन्देह नहीं कि [illegible] दूर करनेके [illegible] जाते हैं। पर व्यायाम और [illegible] उन [illegible] कोई [illegible] परिवर्तन नहीं होता। वे केवल [illegible] हैं जब वे उन लक्षणोंको दूर करनेके [illegible] हैं उनका [illegible] है [illegible] यह [illegible] जायगी

कि, उन लक्षणोंका शरीरमें कोई मूल कारण ही नहीं रह गया। पर औषधियोंके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। जो रोग वास्तवमें शरीरको शुद्ध करनेकी क्रिया है उसे हम औषधियोंसे कैसे चंगा कर सकते हैं? पर उसे स्वाभाविक दशामें छोड़कर और व्यायाम तथा पथ्य आदिसे उसके काममें सहायता देकर हम उस क्रियाको पूर्णता तक अवश्य पहुँचा सकते हैं। जुकाम या सरदी क्या है? छातीके ऊपरके भागमें एकत्र हुए विकार आदिको शरीरसे बाहर निकाल देनेकी क्रिया मात्र है। यदि वह विकार अपने स्वाभाविक मार्ग नाकसे न निकलता तो उसे किसी अस्वाभाविक मार्गका अवलंबन करना पड़ता। फोड़े फुन्सियाँ आदि भी कुछ इसी प्रकारकी क्रियायें हैं, पर उनकी प्रणालियाँ कुछ भिन्न हैं। खाँसी हमारी प्रकृतिका वह प्रयत्न है जो किसी बाहरी अनावश्यक पदार्थको उस स्थानसे बाहर निकालनेके लिए होता है, जहाँ उस पदार्थको रहनेका कोई अधिकार नहीं है। दर्द भी इसी प्रकारकी क्रियाका चिह्न मात्र है, वह स्वयं कोई अलग रोग नहीं है। बुखारमें हमारे शरीरके विकार आदि जलाये जाते हैं, पसीनेवाली क्रियामें इसमें भेद केवल इतना ही है कि यह कुछ अधिक प्रखर रूपमें होती है। तात्पर्य यह कि नैसर्गिक चिकित्सासंबन्धी विशेष बातोंको जाननेके पहले यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि, जिसे हम रोग कहते हैं वह हमें नीरोग बनानेका प्रयत्न मात्र है।

स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्डके चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवेसने एक बार एक व्याख्यानमें कहा था कि आजकलके चिकित्सक चिकित्सा करनेमें बड़ी भूल करते हैं। अगर रोगीको ज्वर हो तो उसका ज्वर रोका जाता है, उसे यदि खाँसी हो तो उसकी खाँसी रोकी जाती है और यदि उसे भूख लगती हो तो जबरदस्ती भूख लगाई जाती है। इस प्रकार हम लोग उस रोगका नाश करनेका प्रयत्न करते हैं जो वास्तवमें हमारे लिए ईश्वरकी बहुत बड़ी देन है और जो सब प्रकारसे हमारा [illegible] करता है। [illegible] रोग न होते तो मानव-[illegible] [illegible] अपने कथनके समर्थनमें कहा [illegible] डाक्टर [illegible] बहुत कल्याण होता है।

रोगोंकी एकता।

इन सब बातों पर विचार करनेसे केवल एक ही परिणाम निकलता है। जब हम यह बात मान लेते हैं कि शरीर अपने भीतरके विजातीय और दूषित पदार्थोंको समय समय पर बाहर निकालनेका प्रयत्न किया करता है तब हमें यह भी मानना पड़ता है कि सैकड़ों हजारों तरहके रोगोंका मूल कारण केवल एक ही है। उसी एक कारणसे कभी सैकड़ों हजारों रूपोंमें प्रकट होता है। वास्तवमें रोग केवल एक ही होता है और जिन्हें हम रोग मानते हैं वे उसके भेद या रूपान्तर मात्र हैं। जर्मनीके डाक्टर हुई कूलेने इस विषयपर एक बहुत बड़ी पुस्तक * लिखी है जिसमें यह बात भली भाँति सिद्ध की गई है कि रोगोंका वास्तविक और मूल कारण केवल एक ही है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत बड़े बड़े डाक्टरोंने एक मत होकर यह बात स्वीकार की है। यदि उन लोगोंके मत और कथन आदि संग्रह किये जायँ तो एक स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है। उन मतोंको उद्धृत न करके हम युक्ति द्वारा ही इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे।

हमारे शरीरका प्रत्येक अवयव एक दूसरेसे सम्बद्ध है। रक्तका संचालन उन सब अंगोंमें समान रूपसे होता है। इस प्रकार रक्त हमारे सारे शरीरको 'एक' बनाये रहता है। ऊपरी आँखसे देखनेमें यह बात न मालूम पड़े, पर वास्तवमें हमारा कोई अङ्ग अकेला ही रोगी नहीं हो सकता। जब कोई एक अंग रोगी होगा तब उसका प्रभाव शेष सब अंगों पर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा। किसी एक अंगको रोगी और शेष सब अंगोंको नीरोग समझना बड़ी भारी भूल है। या तो वह रक्तके कारण और या शारीरिक संगठनके कारण शेष अंगोंको कुछ न कुछ दूषित अवश्य कर देगा। सर्वसाधारण केवल डाक्टरोंके जोर देने पर ही यह बात मानते हैं कि एक अंगके रोगी होनेके कारण शेष अंग रोगी नहीं हो जाते।

इस प्रकार जिन शेष सब अंगोंकी क्रियाओं पर प्रभाव डाले हुए हम किसी एक अंगके [illegible] हमारे सारे शारीरिक संगठन भिन्न भिन्न अवयव [illegible] प्रत्येक अवयव हमारे शारीरिक संगठन पर इस

* हिन्दीमें [illegible] करनेके [illegible] उसका अनुवाद हो चुका है।

प्रकार अवलंबित है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार छुड़ाया [illegible] नहीं जा सकता। इसी लिए बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्यके शरीरमें आंतरी या बाहरी पदार्थोंके कारण कोई दोष उत्पन्न होता है तब उस दोषको दूर करनेके लिए कुछ विशेष शक्तिकी आवश्यकता होती है, शरीरको उसके दूर करनेके लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीरमें वह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यकतासे कम हो तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीरके लिए साधारण स्थितिमें रहना असम्भव हो जायगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अंगमें घर कर लेगा। मोटे मोटे रूपमें, अर्थात् विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज दिखे जाने वाली अवस्थाओंको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमें रोगके जो चिह्न दिखाई पड़ते हैं, उनका मुख्य कारण यही होता है। इसी लिए एकांगी रोगोंको अच्छे अच्छे डाक्टर कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगोंकी अलग अलग चिकित्सा करनेकी अपेक्षा सारे शरीरकी दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है

एकांगी [illegible] कारण [illegible] अज्ञान और अदूरदर्शिता आदि कारण ही [illegible] है। हमारा सारा शरीरिक संगठन एक ही सूत्रमें संबद्ध है और उसका इस प्रकार संबद्ध होना आवश्यक भी है। अन्यान्य रोगोंका एकांगी संगठन कर जो चिकित्सा की जाती है वह शरीरके [illegible] अंगोंमें या तो वास्तविक रोगके लक्षणोंको दूसरे अंगोंमें [illegible] कर देती है और या उन्हें बड़ी और भीतरी अंगोंमें [illegible] है। [illegible] इस बातका ज्ञान ही नहीं होता कि जिन्हें वे [illegible] रोग समझते हैं वे [illegible] किसी रोगके लक्षण मात्र हैं। [illegible] नहीं बल्कि [illegible] चिकित्सा करना है [illegible] शरीरकी [illegible] दूर हो सकता है [illegible] और [illegible] इस [illegible] और

नीरोग हो जायगा। अन्य सिद्धान्तोंकी अपेक्षा यह सिद्धान्त इतना युक्तिसंगत है कि प्रत्येक विचारशील पुरुष इसे तुरन्त ही स्वीकार कर लेगा; और आगे चलकर जब वह इसके अनुसार आचरण करके अनुभव करेगा तब उसपर इस प्रणालीकी उपयुक्तता और भी दृढ़तासे सिद्ध हो जायगी।

अंगरेजी आदि भाषाओंमें बहुतसा ऐसा साहित्य है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि औषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक भी होती हैं; पर स्थानाभावके कारण हम उस विषयको यहाँ नहीं छेड़ते। न जाने औषधियोंके कारण चंगे होनेकी यह धारणा लोगोंमें कहाँसे और कैसे उत्पन्न हो गई; बहुत सम्भव है कि इसकी उत्पत्ति अज्ञानकालमें ही हुई हो। आजकल जितने अनिष्टकारक विश्वास फैले हुए हैं, इसका नंबर उन सबसे बढ़ा चढ़ा है। औषधियों पर इस प्रकारके मिथ्या विश्वासका कारण यह है कि लोगोंको प्रकृति और रोगके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं है। एक बार जब हमारे विचार इस सम्बन्धमें बदल जायँगे तब पुरानी प्रणालीकी भयंकरता आपसे आप हमारी आँखोंके सामने नाचने लगेगी। जब हम एक बार रोगका वास्तविक स्वरूप समझ लेंगे—जब हमें यह मालूम हो जायगा कि यह स्वयं हमारे शरीरको नीरोग करनेकी एक क्रिया है तब हमें औषधियाँ आदि खाकर उसे दूर करनेकी आवश्यकता ही न रह जायगी। केवल एक इसी सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद लोग सदाके लिए औषधि-चिकित्साका त्याग और तिरस्कार कर देंगे।

औषधियोंका प्रभाव।

साधारणतः सब लोग यही समझते हैं कि औषधियोंसे रोग दूर हो जाते हैं। औषधियाँ इसी उद्देश्यसे दी जाती हैं और इसी उद्देश्यसे खाई जाती हैं। रोगोंके सम्बन्धमें लोग यही समझते हैं कि औषधियोंकी सहायतासे हम उन्हें दूर निकाल या नष्ट कर सकते हैं। मनुष्यकी यह मिथ्या धारणा बहुत प्राचीन कालसे हुई थी और यह धारणा अब तक बराबर चली आती है। पर विज्ञान तथा अनुभवके आजकलके नये सिद्धान्तोंने इस धारणासे होनेवाले दोष ढूँढ़ निकाले हैं। आजकलके एक और युक्तिवादके सामने औषधियोंकी

उपयोगिता नहीं ठहर सकती। इस स्थलपर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि ओषधियाँ वास्तवमें क्या हैं, हमारे शरीरपर उनका क्या प्रभाव पड़ता है और बड़े बड़े डाक्टरोंकी उनके सम्बन्धमें क्या सम्मतियाँ हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि ओषधियाँ विष हैं। या तो वे स्वयं विष होती हैं और या हमारे शरीरके अन्दर पहुँच जानेके कारण ही विष हो जाती हैं। इस सम्बन्धमें इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भोजनके अतिरिक्त जो जितने पदार्थ हमारे शरीरके अन्दर प्रवेश करते हैं वे सब विष हैं। सुप्रसिद्ध डाक्टर डूलका मत है कि सब प्रकारकी ओषधियाँ चाहे वे खनिज हों, पशुजन्य हों अथवा वनस्पति-जन्य हों विषके सिवा और कुछ नहीं हैं। जिन वस्तुओं हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता वह हमारे शरीरके लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। एक विद्वानका मत है कि संसारमें केवल जीव, वनस्पति, खनिज पदार्थ और तत्त्व हैं। इनमेंसे प्रत्येकका धर्म है कि वह अपनेसे उच्चतरका पोषण करे। खनिज पदार्थोंसे ही वनस्पतिका पोषण हो सकता है, वनस्पतिसे खनिज पदार्थोंका कोई उपकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वनस्पति ही जीवका पोषण कर सकती है, जीवसे वनस्पतिका पोषण नहीं हो सकता। वनस्पतिमें जितने जड़ पदार्थ हैं वे कभी जीवके द्वारा उनका कोई उपकार नहीं कर सकते। इसी लिए खनिज अथवा अन्य जड़ पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचते ही उसके लिए विष हो जाते हैं। इस सिद्धान्तको आजकलके विद्वानों बहुत अच्छी तरह मान लिया है और इसकी सत्यतामें किसी प्रकारका विवाद नहीं रह गया। ओषधियों द्वारा चिकित्सा करनेके लोग तो इस बात की कल्पना करते हैं कि शरीरमें और भी अधिक विष प्रवेश कर देते हैं, वे इसका क्या करेंगे। इस प्रकार अपथ्यसेवनसे रोगोंकी संख्या और भी वृद्धि हो जाती है।

[illegible]

लिए इसप्रकार हानिकारक है उन्हें जानबूझकर और वह भी रोग दूर करनेके उद्देश्यसे, शरीरके भीतर पहुँचाना कहाँकी बुद्धिमत्ता है!

पर प्रकृतिके चिकित्सामें यह बात नहीं है। वह स्वयं हमारी शारीरिक शक्तियोंमें ऐसा परिवर्तन कर देती है कि वे सब प्रकारके विषोंको अनायास ही नष्ट करके उनका शेष अंश बाहर निकाल देती हैं। किसी साधारण दर्दको लीजिए। डाक्टरी चिकित्सामें उसे दूर करनेका सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीरके किसी अंगमें पीड़ा होती है; वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो दूर होनी चाहिए। उसे दूर करनेके लिए चिकित्सकोंके द्वारा पीड़ित अंगमें अफीमका सत या इसी प्रकारका और कोई विष पहुँचाया जाता है। अंग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है; डाक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणोंका पता लगाने और उन्हें दूर करनेसे मतलब!

पर क्या आप इसे वास्तवमें चिकित्सा कह सकते हैं! इसमें रोगके लक्षण मात्रको दबा देने और साथ ही शरीरके अन्दर बहुतसा विष पहुँचा देनेके अतिरिक्त और क्या होता है! पीड़ा वास्तवमें किसी शारीरिक दोषका चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारणके कार्य्य नहीं हो सकता। यदि शरीरके किसी अंगमें पीड़ा उत्पन्न हो तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारणका पता चले और चाहे न चले।

पीड़ा तो किसी दोषका चिह्न मात्र है वह स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिह्न मात्रको दबा देनेसे उसके कारणका नाश हो सकता है! कभी कभी दर्द दूर करनेके लिए अंगोंमें छाले डाले जाते हैं और कभी फस्द खुलवाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर जोरसे चिल्लाकर हमें दोषकी सूचना दे और हम गला घोंट कर उसे चुप करदें! हमारा इन्द्रतन्तु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीरमें शत्रु आ पहुँचा है और दर्दकी भाषामें वह हमसे सहायता माँगे और चिकित्सक तरह तरहके विष और अन्यायोंसे उसका मुँह बन्द करके कहे कि मैंने रोगीको चंगा कर दिया! यह रोगके प्राण लेकर उसे नीरोग करना नहीं तो और क्या है! इस सम्बन्धमें डा० टाउने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है—"औषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं इस लिए औषधि देना मानो एक और रोग उत्पन्न

करना है। ओषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकते हैं? क्या विष निकालनेमें विष सहायक हो सकता है? क्या विकारोंसे विकार नष्ट हो सकते हैं? क्या प्रकृति एककी अपेक्षा दो दोषोंको सहजमें दूर कर सकती है? कदापि नहीं।" विषैले रोगोंको अच्छा करनेकी आशा रखना भूलोंसे भुगतें माँगना है।

दस्त, कै, या पसीना आदि लानेवाली दवाओंके विषयमें अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि ये बहुतसे विकृत पदार्थ शरीरसे बाहर निकाल देती हैं, पर उनका भी कुछ न कुछ दूषित अंश शरीरमें रह ही जाता है। जुलाब लेनेसे लाभके अतिरिक्त होनेवाली हानियाँ भी कम नहीं हैं। इन हानियोंका अनुभव उन लोगोंको और भी अच्छी तरह हो जाता है जो सालमें एक या दो बार नियमित रूपसे जुलाब लेनेके अभ्यस्त हो जाते हैं। दस्त, कै या पसीने आदिके मार्गसे जो विकार ओषधियोंकी सहायतासे शरीरके बाहर निकाला जाता है वही विकार जल-चिकित्साके कई उपायोंसे भी शरीरको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये ही निकाला जा सकता है।

औषधियोंके विषयमें यह कहा जाता है कि वे शरीरके भीतर उसके भिन्न भिन्न अंगों—मस्तक, पेट, आँत, गुर्दे, जिगर, चमड़े आदि—पर अपना प्रभाव डालती हैं और इनके द्वारा दस्त, पेशाब, पसीने, या कै आदिके रूपमें शरीरके विकृत पदार्थोंको बाहर निकालती हैं। पर वास्तवमें बात यह है कि, ओषधियोंका शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तवमें हमारी प्रकृति स्वयं उन्हीं ओषधियोंको जिनसे रोगका कारण शरीरके बाहर निकाल सकती है, निकाल देती है, और लोग उन्हें ओषधियोंको उन अंगों पर प्रभाव डालनेवाली बतलाते हैं। जिस ओषधिको हमारी प्रकृति ने दूसरे मार्गसे बाहर निकाल सकती है वह ओषधि के रूपमें [illegible] प्रकृति उसके द्वारा बाहर निकाल [illegible]

[illegible]

पौष्टिक औषधें।

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ानेके लिए तरह तरहकी पौष्टिक औषधियाँ खाते हैं। युरोप अमेरिका आदिमें पौष्टिक औषधोंका मुख्य और सार-भूत स्पिरिट या एलकोहल होता है और इस देशमें अफीम आदि। तात्पर्य यह कि सभी स्थानोंमें किसी न किसी प्रकारका मादक पिंड ही शक्ति-वृद्धिके लिए अनेक रूपमें खाया जाता है। अन्य औषधोंकी अपेक्षा पौष्टिक औषधियाँ मनुष्यके शरीरको और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्योंका शरीर पर प्रभाव पड़ता है पर वास्तवमें होता यह है कि, शरीरको बलपूर्वक उन विषोंका विरोध करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि आपको बहुतसे ऐसे दुबले पतले आदमी मिलेंगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवनसे बराबर अच्छा हो रहा हूँ। पर सच पूछिए तो उनके शरीर पर उन औषधियोंका प्रभाव बिल्कुल उलटा पड़ता है। पौष्टिक औषधके सेवनके समय और उससे कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणोंसे वह कुछ अच्छा भी हो जाता है; पर उनका अन्तिम परिणाम बहुत ही भयंकर होता है। परीक्षासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्योंसे न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग पट्ठे आदि। जब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन आरम्भ किया जाता है तब कुछ समयके लिए उनमेंके मादक द्रव्य दुर्बल अंगोंको फुरतीला बना देते हैं और चित्तको थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं, पर शरीरके अंगोंका वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मादक द्रव्योंमें एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता है। वह हमारे शरीरके बहुतसे आवश्यक द्रव्योंका बुरी तरह नाश करते हैं और फलतः शरीरके लिए बहुत ही घातक होते हैं। इस प्रकार पौष्टिक औषधोंका प्रभाव हमारे शरीर पर दो प्रकारसे पड़ता है। एक तो वे कुछ समयके लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त [illegible] बिगड़ी तरह बनी रहती हैं। एक बड़े डाक्टरने ऐसी औषधोंके उत्तम [illegible] हुई [illegible] है। [illegible] जिस समय चलती है

उस समय उसका हृदय तो बहुत भला मालूम होता है, पर उसके नशे-कुनशेके बाद दशा [illegible] उससे मन्द रहती है।

बहुतसे लोगोंका यह खयाल है और अनेक डाक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औषधें पाचन-शक्तिको बढ़ाती हैं; पर यह खयाल भी बहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन-शक्तिका जितना अधिक नाश मादक द्रव्योंसे होता है, उतना और दूसरे द्रव्योंसे हो ही नहीं सकता। शराब पीने या अफीम आदि खानेवाले लोगोंकी पाचन-शक्ति सदा बहुत मन्द रहती है। बहुधा शराबी रातको शराब पीनेके बाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या बहुत थोड़ा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही बहुत कम खाया करते हैं। भारतमें बहुधा प्रायः ब्राह्मण निमंत्रण आदिके समय खूब भाँग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगोंको भाँग पीने पर बहुत भूख लगती है और वे सेरों अन्न खा जाते हैं, पर वही भाँग पीनेवाले सदा इस बातकी शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भाँग खिला तो बहुत कुछ देती है, पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँसे। मादक द्रव्योंसे तो पाचन-क्रियामें बाधा मात्र होती है। एक डाक्टरने तो तम्बाकूकी केवल इसी लिए निन्दा की है कि उससे भूख तो बढ़ जाती है पर खाया हुआ पचता नहीं।

मादक द्रव्योंका एक यह भी गुण बतलाया जाता है कि उनसे शरीरमें गरमाहट रहती है, पर यह कथन भी बिलकुल निर्मूल है। डाक्टर रिचर्डसनने शराब पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थान पर आपने लिखा है—"किसी पशुको कोई मादक द्रव्य पिलाकर उसके शरीरकी परीक्षा कीजिए तो आपको मालूम होगा कि मादक द्रव्यने उस पशुके शरीरकी गरमाहट कम कर दी है। इसके अतिरिक्त [illegible] इसका मुख्य कारण यह है कि [illegible] शरीर ठंडा होने लगता है। इसके कुछ काल बाद [illegible]

औषधों पर कुछ सम्मतियाँ।

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढ़कर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधोंसे मनुष्यके शरीरमें केवल नये रोग ही पैदा होते हैं। उक्त बातें केवल मन-गढ़न्त ही नहीं हैं बल्कि बड़े बड़े डाक्टरोंके अनुभवका सार हैं। इस स्थान पर औषधोंके सम्बन्धमें कुछ बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ संक्षेपमें दे देना अनुचित न होगा। नीचे जिन डाक्टरोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं वे डाक्टर बड़े बड़े डाक्टरी कालेजोंके अध्यापक हैं और बहुत दिनोंसे औषधों द्वारा ही चिकित्सा करते हैं। अतः औषधोंके दोष सिद्ध करनेके लिए इनके कथनसे बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

डा० स्टेफेन्स कहते हैं कि नया डाक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोगके लिए बीस औषधें हैं, पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके बाद उसको समझमें आता है कि प्रत्येक औषधसे बीस रोग उत्पन्न होते हैं। इस उन्नत कालमें भी रोगियोंकी यातना पहलेकी तरह ही ज्योंकी त्यों है। इसका कारण यही है कि डाक्टर लोग प्रकृतिका मनन न करके अपने पूर्वजोंके लेखोंका ही अध्ययन करते हैं। प्रो० पेनका मत है कि शरीरमें औषधें भी वही काम करती हैं जो काम स्वयं रोगोंके कारण करते हैं। अधिक औषध भी रोग ही उत्पन्न करती है। एक स्थल पर आपने यह भी कहा है कि एक नया रोग पैदा करके हम पहलेवाले रोगको अच्छा करते हैं।

प्रो० क्रार्क कहते हैं,—चिकित्सकोंने रोगियोंको लाभ पहुँचानेकी धुनमें उलटे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारों ऐसे रोगियोंके प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृतिपर छोड़ दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषध समझते हैं वे वास्तवमें विष हैं और उनसे प्रत्येक मात्रासे रोगोंका बल बढ़ता है। प्रो० कार्क्सका मत है कि रोगीको जितनी ही कम औषधें दी जाँय उसका उतना ही अधिक उपकार होता है। [illegible] कहा है—औषधोंसे कभी रोगी अच्छे नहीं होते, [illegible] है। डा० [illegible] लिखा है—चिकित्सकों [illegible] उनकी [illegible] भी बढ़ाई है। डाक्टर सेडलर

कहते हैं कि [illegible] और उनकी बहुतसी औषधियाँ केवल ढोंग ही [illegible] [illegible] है। औषधियाँ [illegible]-रहित क्या होता है।

प्रो० [illegible] कहते हैं—मैंने कई रोगोंमें औषधियोंका प्रयोग नहीं किया [illegible] एक बहुत ही [illegible] हुआ। अब मुझे निश्चय हो गया है कि औषधियोंकी [illegible] प्रकृतिके [illegible] रोगोंसे बहुत [illegible] मिलती है।

बचपनमें बहुत दिनोंसे [illegible] का बेपरवा कभी कोई इलाज नहीं किया जाता। पर [illegible] डाक्टरोंसे [illegible] बहुत [illegible] है। जब भी [illegible] बेपरवा बहुत अधिक प्रयोग होता है तब बहुत [illegible] कुछ [illegible] आरम्भ कर देते हैं। अमेरिकाके एक प्रान्तमें [illegible] डा० [illegible] डाक्टरोंके एक सम्मेलनमें [illegible] कहा था कि कैसे बिना किसी प्रकारकी औषधिके उपयोगके ही [illegible] पड़े रोगियोंको बिलकुल चंगा कर दिया है। डा० [illegible] बहुतसे रोगियोंके [illegible] उन्हें [illegible] देखा [illegible] औषधियोंके अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने औषधियोंका व्यवहार छोड़ दिया। उनके यह प्राकृतिक चिकित्सा करने [illegible] उनका एक भी रोगी न मरा और रोगोंके लिए उन्हें [illegible] मिलना कठिन हो गया।

डा० [illegible] कहते हैं कि रोगोंका नाश करनेमें सबसे अधिक सहायता उन्हीं रोगोंसे मिली है जिन्होंने किसी डाक्टरकी कोई परीक्षा नहीं की है और न कोई [illegible] पढ़ा है। अनेक प्रकारकी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्साने ऐसे ही रोगोंको निकाली हुई है, जो चिकित्साशास्त्रसे एकदम अपरिचित थे। डा० एलनका मत है कि चिकित्सा-सम्बन्धी बहुतसी बातें [illegible] इन रोगोंको [illegible] ही मिली हैं, इन रोगोंने [illegible] और [illegible] सफल बनाते हैं। डा० [illegible] कहते हैं—औषधियाँ आदि तैयार करनेके लिए [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] किया जाता है [illegible] [illegible] [illegible] औषधियाँ [illegible] फेंक दी जायँ तो मनुष्य-जातिका [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] बहुत [illegible] [illegible] [illegible] औषधियाँ [illegible] नहीं [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

जीवनके किसी प्राकृतिक विकारके विरुद्ध किसी औषधिका प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है? ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों त्यों वे समझते जाते हैं कि औषधियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डाक्टरोंके नाम दिए गए हैं, वे सब अमेरिकाके हैं। अब अँगरेजी साम्राज्यके कुछ डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सुनिए। डा० इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति कालमें भी औषधियोंके गुण निश्चित और सन्तोषप्रद नहीं हैं। डा० अबरनेथी कहते हैं कि चिकित्सकोंकी संख्या बढ़नेके साथ रोगोंकी संख्या भी उसी मात्रामें बढ़ती जाती है। सर मिचलका मत है कि रोगोंके मूल कारण तक औषधियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। डा० राबिन्सनका कथन है कि आज कलके व्यवहारमें औषधिका गुण विज्ञान, आरम्भ और अन्तके विलक्षण निश्चय पर अवलम्बित है। डा० कूपरका सिद्धान्त है कि औषधियोंपर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लंदनके रायल कालेजके फेलो डा० रैमज कहते हैं कि आजकलकी औषधि-चिकित्सा बड़े बड़े प्रोफेसरोंके लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिये कि हमारी औषधियोंसे कितना कम लाभ होता है और रोगीकी दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मैं निर्भय होकर कह सकता हूँ बिना चिकित्साके रोगीकी दशा अपेक्षाकृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर [illegible] कहते हैं कि विज्ञानके सामने आजकलके चिकित्सा कालकी प्रवृत्ति और रोगीकी वर्तमान चिकित्सा प्रणालीमें एकदम अन्तर है। दवाओं की औषधियाँ देनेवालोंके लिए बहुत ही [illegible] हैं। [illegible] प्रकट हुआ था कि आजकल जिस चिकित्सा विज्ञान कहते हैं, वह वास्तवमें भी विज्ञान नहीं है। यह [illegible] अनुभूत [illegible] और [illegible] सम्मतियोंका [illegible] है। [illegible] मत है [illegible] चिकित्सा [illegible] अधिक [illegible] विज्ञान [illegible] अच्छे होते हैं, [illegible] अच्छे हो जाते हैं, [illegible] अच्छे हो जाते हैं। [illegible] देखकर [illegible] कहते हैं और [illegible]

चिकित्सा-प्रणाली रोक दे और या लोगोंके जीवनकी रक्षाके कोई नया उपाय निकाले। डा० पोल्टन, जिन्होंने "औषधियोंका इतिहास" नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, कहते हैं-हम औषधियोंका जितना अधिक प्रयोग करते हैं, हमारा ज्ञान या अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। औषधियाँ प्रत्येक मात्रा रोगियों संबंधी दृष्टि पर एक अन्ध प्रयोग और अनुभव मात्र है। डा० सर जान्सुन, जिन्होंने प्रकृति और औषधि आदिके सम्बन्धमें कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, कहते हैं-हमारी औषधियोंका प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है। युद्ध, महामारी और अकाल आदिके कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरे हैं, उनसे कहीं अधिक औषधियोंके प्रयोगसे मरे हैं। प्रो० कालराउस कहते हैं कि शिक्षित चिकित्सकोंकी अपेक्षा उन अशिक्षित चिकित्सकोंपर मेरा कहीं अधिक विश्वास है जिनकी चिकित्सा केवल अनुभवपर निर्भर होती है। सभी देशों और समयोंमें उन लोगोंने असली विश्वविद्यालयोंसे कहीं अधिक यश प्राप्त किया है। डाक्टर जान्सुन जो चिकित्सा-सम्बन्धी एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक हैं, कहते हैं-अपने बहुत दिनोंके अनुभवसे मैं यह कह सकता हूँ कि यदि संसारमें कोई चिकित्सक, वैद्य, डाक्टर या हकीम न होता तो आजकलकी अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो जाते और मृत्यु-संख्या भी बहुत घट जाती।* पेरिसके डाक्टर लेगोत कहते हैं-इस समय हम लोग वहाँ हैं मूर्ख कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो हमें अपना कार्य बदल देना चाहिए।

एडिन्बरगमें प्रोफेसर जान हर्ट नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने बहुत वर्षोंतक चिकित्सा करनेके उपरान्त औषधियोंकी निरर्थकता समझी और तब बिना औषधियोंके चिकित्सा करने लगे। कथन मात्र है कि, डाक्टरी कालेजमें

* यह बात एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक [illegible] अमेरिकाके प्रेसीडेंट [illegible] कहा था। उनके एक [illegible] डाक्टरोंके [illegible] कहा है कि [illegible] नहीं है और कई [illegible] रोगों में [illegible] अनुभव होता है। [illegible] "[illegible] डाक्टरोंके [illegible] नहीं है [illegible] इन रोगोंमें [illegible] चिकित्सा करते हुए भी कुछ [illegible] में [illegible] अनुभव होता है।

विद्यार्थियोंकी बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियोंका अध्ययन करनेके लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिरसे उसके योग्य बननेमें कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है। सर कूपरका मत है कि औषधि विज्ञानकी उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिन पर दिन बढ़ती हुई हत्यासे हुई है। प्रो० माहका मत है कि समस्त विज्ञानोंमें औषधि-विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है। एडिनबराके मेडिकल कालेजके प्रो० ग्रेगरीने कहा है कि चिकित्साशास्त्रमें जिन बातोंको सत्य माना जाता है उनमेंसे ९९ प्रति सैकड़े मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिल्कुल ही भोंडे और भद्दे हैं। प्रो० कार्सन कहते हैं—हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी औषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिसे। सम्भवतः उन्हें रोटीरूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं। सर रिचर्डसनने कहा है कि औषधियोंके व्यवहारसे सभ्यलोगोंकी आयु बहुत ही कम हो गई है। डा० टाइडमका मत है कि संसारमें तीन चौथाई आदमी दवाओंके दुरुपयोगसे मरते हैं। फ्रान्सके प्रसिद्ध शरीर-शास्त्रवेत्ता मैगेन्डिक कहते हैं कि—औषधियोंके विषयमें संसारमें किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोगको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता प्रकृतिसे ही मिलती है, डाक्टरोंसे बहुत ही थोड़ी सहायता मिलती है और वह भी उस दशामें जब वे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचावें। डाक्टर ओसलर जो कई विश्वविद्यालयोंमें चिकित्सा-शास्त्रके अध्यापक रह चुके हैं और जो औषधि-शास्त्रके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं, बिना औषधिकी चिकित्साकी प्रशंसा या निन्दा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमेरिकनामें लिखते हैं कि औषधियोंकी निरर्थकताका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें टायफाइड ज्वरकी चिकित्सामें बड़ी बड़ी भयंकर और उग्र औषधियोंका प्रयोग होता था। रोगीकी फसद खोली जाती थी, उसके शरीर पर छाले डाले जाते थे और तरह तरहके भीषण उपाय किए जाते थे। पर आजकलके रोगियोंको विशेष प्रकारसे स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित ही कोई औषधि दी जाती है। इससे यही सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि औषधियोंका उन रोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है। अन्तमें [illegible] यह [illegible] चाहे [illegible] है जो औषधि [illegible] समझता है।

प्राकृतिक चिकित्सा।

इन पृष्ठोंके पढ़नेके उपरान्त पाठकोंके मनमें सामान्यतः यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगोंके शमनका सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौनसा है? आजकल अनेक प्रकारकी चिकित्सा-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें औषधियोंका प्रयोग बिलकुल नहीं होता, केवल जड़ी उपचारोंसे रोगोंको शान्त किया जाता है। ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्साके नामसे अभिहित हैं। और जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, विद्युत्-चिकित्सा आदि अनेक प्रकारकी चिकित्साएँ हैं। इनके अतिरिक्त मेसमरिज्मके अनेक ढंगों और प्रकारोंसे भी रोगियोंकी चिकित्सा की जाती है। यद्यपि ये सभी चिकित्साएँ प्राकृतिक कहलाती हैं, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर यह पता लग जाता है कि उनमेंसे अधिकांशमें अनेक प्रकारकी ऐसी क्रियाओंकी आवश्यकता होती है जिन्हें कोई समझदार प्राकृतिक नहीं कह सकता। कुछ प्रणालियाँ अवश्य ऐसी हैं जो ठीक ठीक अर्थमें प्राकृतिक कही जा सकती हैं और उपवास-चिकित्सा उनमेंसे सर्वश्रेष्ठ है। उपवास-चिकित्सामें न तो किसी प्रकारके जड़ी उपचारकी आवश्यकता होती है और न किसी प्रकारके यंत्र-प्रयोगकी। इसमें आवश्यकता केवल इस बातकी होती है कि मनुष्य उस समय तकके लिए अपना भोजन छोड़ दे, जब तक कि उसे वास्तविक और स्वाभाविक भूख न लगे। इसके अतिरिक्त उपवास-काल्में मनुष्यकी दृष्टि बनाए रखनेके लिए उसमें कुछ व्यायामका भी विधान है।

अब इस प्रणालीसे औषधि-चिकित्साका मुकाबला कीजिए। दो ऐसे मनुष्योंको लीजिये जिनकी पाचन-शक्ति नष्ट हो गई हो। उनमेंसे एक मनुष्य तरह तरहकी गोलियाँ खाकर, अवलेह चाटकर और दवाओंकी बड़ी बड़ी बोतलें खाली करके अपनी भूख बढ़ाता है, और दूसरा मनुष्य केवल दो चार दिनोंतक उपवास करके और नियमित दो चार मालिश चढ़ा लगाके अपनी भूख ठीक कर लेता है। अब आप ही सोचिए कि इन दोनोंमें फायदेमें कौन रहा? दवाएँ खाकर अपने शरीरको मजबूत बनानेवाला अथवा उपवास और व्यायाम करनेवाला? बड़े बड़े डाक्टरोंके अनुभव करके यह निश्चय निकला है कि किसी रोगके लिए [illegible] रोगको कई तरहकी

छोटी मोटी शिकायतें पैदा हो जाती हैं। किसीको कब्जियत आ घेरती है तो किसीके सिरमें दर्द होने लगता है। किसीकी नींद कम हो जाती है तो कोई दुर्बल और शक्तिहीन हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति तो हमें सूचना देती है कि हम उसके स्वभावके विरुद्ध काम करते हैं—उसके साथ निष्ठुरताका व्यवहार करते हैं, पर हम उसकी सूचनाओं पर ध्यान ही नहीं देते, जबरदस्ती उसका गला घोंटते चलते हैं, अन्तमें प्रकृति भी लाचार होकर असामान्य स्थितिमें पहुँच जाती है, और उस दशामें शरीर ऐसा निकम्मा हो जाता है कि बिना औषधियोंकी सहायताके चल ही नहीं सकता। जब कुछ समयमें शरीर साधारण औषधियोंका अभ्यस्त हो जाता है तब उसे अधिक तीव्र औषधियोंकी आवश्यकता होती है। यह क्रम बराबर बढ़ता चला जाता है और अन्तमें मनुष्यके प्राण लेकर ही छोड़ता है। पर जो मनुष्य उपवास करता, अथवा हल्की और जल्दी पचनेवाली चीजें खाता, स्वच्छ वायुमें रहता और खूब कसरत करता है, वह स्वयं आरोग्यताकी किस स्थिति तक पहुँच सकता है इसका अनुभव प्रत्येक विचारवान् मनुष्यको स्वयं करना चाहिए। व्यायामसे शरीरमें नए बलकी उत्पत्ति होती है, रग-पट्ठे मजबूत होते हैं, फेफड़े, जिगर, गुर्दे आदिके काम अधिक उत्तमतापूर्वक होने लगते हैं और सारे शरीरमें एक नई संजीवनी शक्ति आ जाती है। रोगीकी पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है और उसे खूब खुलकर भूख लगती है। औषधियाँ किसी एक रोगको दूर करके भी अपने बहुतसे बुरे प्रभाव और अंश छोड़ जाती हैं, पर प्राकृतिक-चिकित्साकी औषधियाँ-व्यायाम, शुद्ध-वायु, हलका और सुपाच्य भोजन आदि-रोगको अच्छा करनेके अतिरिक्त शरीरके और दूसरे बहुतसे विकारोंको भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणालीमें रोगको बल पूर्वक जहाँका तहाँ दबाया नहीं जाता बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर ई. एच. डेवीने एक बार कहा था-" किसी रोगी मनुष्यके पेटमें भोजन न रहने दो, इससे वह रोगी नहीं बल्कि रोग भूखों मर जायगा। " और यह बात वास्तवमें है भी बहुत ठीक। उपवास-चिकित्साके सिद्धान्त इतने सरल, उपयोगी और [illegible] कि [illegible] शास्त्र वेत्ता मात्र उसमें [illegible] है सभी देशों और प्रकारोंके [illegible] किसी न किसी अवसर पर [illegible] अनुसार [illegible] है। [illegible] सभी

विचित्र-रूपसे उनका समर्थन होता है और यहाँ तक कि पशु पक्षी आदि भी अपने आचरणोंसे उन सिद्धान्तोंकी पुष्टि करते हुए देखे जाते हैं। उपवासके सिद्धान्तोंको उपयोगिता समझनेके लिए इतने बड़े घर और क्या चाहिए!

शरीरकी क्रिया पर उपवासका जो परिणाम होता है उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ इस पुस्तकके आरंभमें ही कहा जा चुका है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि लोग बीच बीचमें अपने खाने खर्च तो अवश्य पूरी ले लेते हैं, पर अपने शरीरको कभी पूरी नहीं देते। इस पेट या नलियाँमें होनेवाले कामोंको छोड़ देना ही वास्तवमें शरीरको पूरी देना नहीं है, क्योंकि उस समय शरीरकी भीतरी मांसपेशियोंको आराम करनेका अवसर नहीं मिलता। हम अपने दिमागके साथ भले ही कभी कभी थोड़ी बहुत खिलवाड़ कर लिया करते हैं; पर अपने पेटके साथ हम कभी खिलवाड़ नहीं करते और पेटमें सदा काम लेते रहना ही सब प्रकारके रोगोंकी जड़ है।

धर्मग्रन्थ और उपवास।

[illegible] जिसने कुछ भी, धर्म या सम्प्रदाय है उन सबने किसी न किसी प्रकारसे उपवास या कमी अवश्य ही की है। [illegible] धर्मोंके [illegible]। [illegible] धर्मोंने [illegible] और [illegible] लिए [illegible] दिन है। [illegible] ५५० से ऊपर है। [illegible] [illegible] है। [illegible] है और वह [illegible] है। [illegible] है कि [illegible] है। [illegible] है। [illegible]

खा जाते हैं और छपरसे जहाँतक अधिक हो सकता है, दूध रबड़ी और मलाईका भी सत्यानाश करते हैं। रोजके भोजनसे दुगुना और तिगुना भोजन केवल इसी लिए डाला है कि उस दिन वे लोग व्रत रहते हैं—उपवास करते हैं। इसमें दोष लोगोंका ही है, धर्मग्रन्थोंमें उनकी आज्ञा केवल हित और कल्याणकी दृष्टिसे दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्मग्रन्थोंमें निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकारके दूसरे व्रत भी हैं जिनमें किसी प्रकारके विघ्नोत्पादनकी भी सम्भावना नहीं होती। भारतमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहाँकी स्त्रियाँ साधारणतः उन रोगोंसे मुक्त रहती हैं जिनके कारण यूरोप परेशान रहते हैं। कब्जियत और अनपच आदि रोग स्त्रियोंको बहुत कम होते हैं। जैनियोंके धर्मग्रन्थोंमें केवल अनेक प्रकारके उपवासोंका ही विधान नहीं है बल्कि बहु-काल-व्यापी उपवासोंका भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहों बल्कि महीनों तक चलते हैं और बहुतसे अंशोंमें उन उपवासोंमें मिलते जुलते हैं जो आजकलके पाश्चात्य उपवास-चिकित्सक अपने रोगियोंको करते हैं। मुसलमानोंका रमजानके महीनेमें तीस दिनों तक अपने धर्मग्रन्थके आज्ञानुसार [illegible] रखना पड़ते हैं। [illegible] दिन वे बहुत सवेरे [illegible] भोजन कर लेते हैं और सब दिन भर कुछ नहीं खाते, रोजा सूर्यास्तके बाद ही खुलता है। ईसाइयोंके धर्मग्रन्थोंमें भी उपवासकी स्पष्ट आज्ञा है। वे उपवासके दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही खाते हैं और बहुधा कई कई दिनों तक उपवास रखते हैं। सत्य यह है कि सभी प्रचलित और प्राचीन धर्मोंमें उपवास सदा विधान है और उनके ग्रन्थोंके अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

[illegible] बहुत [illegible] है [illegible] उपवासकी आज्ञा नहीं है और [illegible] भी बहुत [illegible] है। बहुत [illegible] कालमें, जब कि मनुष्य [illegible] था [illegible] केवल [illegible] करता था। [illegible] मनुष्य जातिमें

अधिक भोजन करनेका रोग बहुत बादमें फैला है। पर प्राचीन कालमें प्रायः सभी देशोंके लोग विशेषतः धर्मिष्ठ लोग बहुत थोड़ा भोजन करते थे और प्रायः लंबे चौड़े उपवास किया करते थे। किसी देश और किसी धर्मके साधु, सन्त और महात्माको लीजिए, उसके सम्बन्धमें यह बात अवश्य प्रसिद्ध होगी कि उसने इतने दिनोंके और इतने उपवास किए थे। भारतके प्राचीन ऋषियोंकी तपस्याका उपवास एक प्रधान अंग था। बड़े बड़े धर्माचार्य्य स्वयं बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तोंको उसके लाभ बतलाते थे और स्वयं उनके आदर्श बनते थे। पर आजकल जो लोग धार्मिक दृष्टिसे उपवास करते हैं, प्रायः सभी देशोंमें उन्हें धर्मान्ध बतलाया जाता है और उनकी हँसी उड़ाई जाती है। इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमोंसे एकदम अनभिज्ञ हो गए हैं। जो लोग अपनेको ही ज्ञान समझते हैं उन्हींकी आँखें खोलनेके लिए उपवासके सिद्धान्तोंका फिरसे प्रचार होने लगा है।

इतिहास और उपवास।

किसी देश और कालके इतिहासमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो उपवास-सिद्धान्तके बड़े समर्थक और पोषक हों। भारतीय इतिहास तो ऐसे लोगोंसे भरा ही पड़ा है, अन्य देशोंमें भी ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है। अरब देशमें एक बहुत बड़ा चिकित्सक हो गया है जो बिना किसी प्रकारके औषधि-प्रयोगके चिकित्सा करता था और रोगियोंके लिए केवल इसी लिए पहरा दिया करता था कि जिससे वे कुछ खा न लें। ईसाई पादरी और धर्माचार्य बहुधा लगातार बहुत दिनतक उपवासकी ओर चले जाते थे। और किसी प्रकारका आहार न करते थे। मठ-मंदिर होनेके अपने थे एक दम भी मुझे न [illegible] और [illegible] के आने बाद भी उन्हें इतनी [illegible] अपने अपने मठ तक पहुँच [illegible] महात्मा [illegible] अपने जीवनका [illegible] कर देते [illegible] और कम प्रकारके अन्न-दलको तो

उसने उचित न समझा, पर वह एक पहाड़की चोटीपर चला गया और वहाँ पहुँचकर उसने अन्न जल छोड़ दिया। उसे आशा थी कि इस प्रकार बिना अन्न-जलके रहनेसे उसके प्राण अवश्य निकल जायँगे। पर उसकी यह आशा पूरी नहीं हुई और वह बिना अन्न जलके सत्तर दिनों तक जीता रहा। इतने दिनोंमें उसका दुःख भी कम हो गया और उसके मनमें ज्ञान भी उपजा। इकहत्तरवें दिनसे उसने एक एक तोला भोजन करना आरम्भ किया। इसके बाद उसका स्वास्थ्य पहलेकी अपेक्षा बहुत सुधर गया। वह चौदह वर्षोंतक जीवित रहा और उसने अनेक मठ आदि स्थापित किए। आजकल भी यह देखा गया है कि खानोंमें काम करनेवाले कुली केवल पानी पीकर ही आठ दस दिनों तक रहते हैं और बिना अन्नके बराबर काम करते रहते हैं। बहुतसे सन्यासीने बिना भोजनके गरमसे गरम देशोंमें आठ आठ और दस दस दिन बिता दिए हैं।

पशु और उपवास।

उपवासकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए हम अपने अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह तरहके पशुओं और पक्षियों और दूसरे जीवोंसे मिल सकते हैं। मनुष्यकी तरह इन जीवोंको सभ्यताने अपने पाशमें नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्थामें ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदिकी बातें आप दीजिए जिनके मालिक उन्हें जरासा बीमार समझकर ही किसी पशु-चिकित्सालयमें भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्योंको छोड़कर बाकी प्रायः सभी जीव किसी भारी रोगसे पीड़ित होने पर सबसे पहले भोजनका ही परित्याग करते हैं। यदि किसी तरहसे कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर बिना जल और भोजनके कई कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। [illegible] बदलनेके समय साँप कई सप्ताहों तक बिना आहारके ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करनेके कारण [illegible] और जल्दी हो जाता है [illegible]

बहुधा जाड़ेमें एकान्तमें बिना आहारके पड़े रहते हैं। जाड़े भर निराहार रहने पर भी उनकी शक्ति बहुत ही कम घटती है और जाड़ेके अन्तमें वे बड़े आनन्दसे विचरने लगते हैं। रेंगनेवाले जीवोंको यदि कुछ अधिक समय तक आहार न मिले तो उनकी शक्ति किसी प्रकार क्षीण नहीं होती। रीछोंकी शरीररचना मनुष्यके शरीरसे मिलती जुलती होती है। ठण्डे देशोंमें जाड़ेके दिनोंमें रीछ प्रायः चार महीने अपनी माँदमें निराहार पड़े सोते रहते हैं। इस बीचमें यदि कोई उन्हें छेड़े तो वे बहुधा उसे मार डालनेका ही प्रयत्न करते हैं। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि रोगी होने पर सब प्रकारके जीव आहार छोड़ देते हैं, पर ऊपर जो उदाहरण दिए गये हैं उनसे यह भी सिद्ध होता है कि पशु अपना स्वास्थ्य बनाए रखनेके विचारसे भी समय समय पर उपवास किया करते हैं। डा० मैकफेडनका एक छोटासा कुत्ता गलतीसे एकबार एक बहुत ऊँचे मकानकी छत परसे नीचेके पत्थरके फर्श पर गिर पड़ा। उसके गिरनेके समय जो शब्द हुआ था उससे यह अनुमान हुआ था कि अब इसकी एक भी हड्डी साबित न बची होगी। गिरते ही उसके मुँह और नाकसे लहूकी धारा बहने लगी थी और वह बिलकुल बदहवास हो गया था। कुछ उपस्थित लोगोंने डाक्टर मैकफेडनको सम्मति दी कि इस कुत्तेको मारकर इसे इस भयंकर यातनासे मुक्त कर दें। पर उन्होंने उन लोगोंकी यह बात स्वीकार न की और उस कुत्तेको एक कोठेमें एकान्त पर ले जाकर रूई पर अपनी उपवास-चिकित्साकी परीक्षा करना निश्चय किया। जाँच करने पर मालूम हुआ था कि उसकी दो टाँगें और तीन पसलियाँ टूट गई थीं और जिस कठिनाईसे वह साँस लेता था उससे सिद्ध होता था कि उसके फेफड़ों पर भी अवश्य चोट पहुँची है। सब लोग उसके जीनेसे निराश थे पर [illegible] पड़ा रहा। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अपने साथ लेकर फिर उसी स्थान पर गए, जहाँ वह मकानकी छत परसे गिरा था और उन्होंने वहाँके पशु-चिकित्सकको उसे दिखाया। तब चिकित्सकको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सबसे पहले तो उसकी समझमें यही बात नहीं आती थी, कि वह बिना किसी प्रकारके भोजन या ओषधिके जीता [illegible] कैसे बचा। उसके सिद्धान्तके अनुसार तो उसे जीवित रखने और नीरोग करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता थी कि बहुतसा भोजन, शराब और ओषधियाँ [illegible] नलीकी सहायतासे उसके पेटमें उतारी जायँ, तब फिर भले उसका जीवित रहना और चंगा हो जाना उसकी समझमें ठीक आ सकता था। इसी लिए वह उस बातको अनहोनी समझता था। अन्तमें उसे यही कहना पड़ा कि इस कुत्तेकी जीवन-शक्ति ही कुछ अद्भुत है।

प्रत्येक मनुष्य अपने अनुभव द्वारा यह बात अच्छी तरह समझ सकता है कि [illegible] और [illegible] जानवर [illegible] उपवास कर लेते हैं और बहुधा आश्चर्यजनक शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं। अब प्रश्न [illegible] इनको शिक्षा उन्हें कहाँसे [illegible] है, और [illegible] यही शिक्षा पशुओंके द्वारा हम मनुष्यों [illegible] हम [illegible] नहीं देते। हम [illegible] करते हैं और औषधियोंके [illegible] और [illegible] समझते यह है कि हम [illegible] हमारा कोई सम्बन्ध है [illegible] बिलकुल भिन्न और विशिष्ट है। [illegible] हम [illegible] [illegible] बातमें बना है और [illegible] इसके [illegible] हमारे [illegible]

चिकित्सा और उपवास।

आजकल जितनी चिकित्साएँ प्रचलित हैं और जिनमेंसे अधिकांशको हम अप्राकृतिक बतला आए हैं, उन सब चिकित्साओंमें भी किसी न किसी अवस्था और किसी न किसी रूपमें उपवास अवश्य कराया जाता है। रोगीका भोजन परिमित कर देना तो चिकित्सक मात्रका मूल-मंत्र है पर बहुतसी अवस्थाओंमें वे उपवासकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता बतलाते हैं। ज्वर आदि बहुतसे रोगोंके आरम्भमें तो रोगीको सबसे पहले अवश्यमेव उपवास ही कराया जाता है और उठते हुए ज्वरको छेड़ना किसी प्रकार ठीक नहीं समझा जाता। यद्यपि बहुतसे ऐसे डॉक्टर रोगी भी मिलेंगे जो रातको थोड़ी हरारत होते ही सवेरे दो चार ग्रेन दवाकी पी डालेंगे तथापि कोई बुद्धिमान् उनके इस कृत्यकी प्रशंसा न करेगा। अनेक रोगोंके आरंभमें तो हम अक्सर ही पर-दिवस होकर प्रकृतिके कुछ नियमोंका पालन करते हैं, क्योंकि यदि हम उनका पालन न करें तो प्रकृति हमें बटोर देती है। पर आगे चलकर जब हम उन नियमोंके पालनसे कुछ लाभ उठा चुकते हैं तब उन्हींका अतिक्रमण करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय हम उस स्थितिमें पहुँच जाते हैं जिसमें प्रकृतिका हमें तुरन्त ही नहीं बल्कि कुछ कालके उपरान्त दण्ड मिलता है। अतः रोगोंके आरम्भमें जब डाक्टर, वैद्य या हकीम अपने रोगीको उपवास कराता है तो उससे रोगका जोर बहुत कुछ घट जाता है। यदि रोगीको उसी स्थितिमें कुछ और समयतक रहने दिया जाय—उसे न तो किसी प्रकारकी दवा ही दी जाय और न किसी प्रकारका भोजन—तो अवश्य ही वह बहुत शीघ्र [illegible] है। [illegible] प्रकृतिक [illegible] है।

[illegible]

जाता है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगीको दस बीस दिनोंतक बिना भोजनके रख सकता है; पर किसी डाक्टरके लिए ऐसा करना असम्भव है। प्रायः हकीमों और वैद्योंके ऐसे कृत्योंपर डाक्टर लोग हँसते हुए देखे गए हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि रोगीको किसी प्रकारका आहार न दिया जायगा, तो उसकी शक्ति [illegible] हो जायगी और वह नीरोग होनेके बदले मर जायगा। पर उनका यह मत गणितमें ठीक नहीं उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि उपवास और फल-रसका परिणाम कितना सफल है। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास करानेमें वैद्यों और हकीमोंकी निन्दा करने और हँसी उड़ानेवाले डाक्टर भी कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगोंमें अपने रोगियोंको आठ आठ और दस दस दिनतक बिना भोजनके ही रखते हुए देखे गए हैं।

आयुर्वेद और उपवास।

कुछ [illegible] से कुछ सज्जनोंने यह कल्पना की होगी कि हमारे प्राचीन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेदमें उपवासको कितना महत्त्व दिया गया है और उसके क्या क्या लाभ बतलाए गए हैं। हमारे यहाँके आयुर्वेदका मत है, 'कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ हैं। जब तक ये तीनों पदार्थ समान स्थितिमें रहते हैं तब तक मनुष्य नीरोग रहता है, पर जब इनमेंसे कोई पदार्थ घट या बढ़ जाता है, तब उसको किसी न किसी रोगके होते हैं, अर्थात् इनके कारण मनुष्यके शरीरमें कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। यह एक बहुत ही [illegible] हो सकता है और [illegible] है। यही कारण है [illegible] [illegible]

जाने पर वह बिना भोजनके नहीं रह सकता । यह बात वैद्यकके कई ग्रन्थोंमें लिखी हुई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि लंघन करनेसे दोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हलका हो जाता है और भूख बढ़ती है । जब कि दोषोंहीसे रोगोंकी सृष्टि होती है और लंघनसे दोषोंका नाश होता है तब इस सिद्धान्तके माननेमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि लंघनसे रोगोंका नाश होता है। सुश्रुतमें यह बात स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है कि जिस मनुष्यकी अग्नि और दोष ठीक दशामें न हो, लंघनसे उसकी अग्नि ठीक दशामें आ जाती है और उसके दोषोंका परिपाक हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि रोगी जब आहार छोड़ देता है तब उसकी आहार पचानेवाली शक्ति उसके रोगका दमन करनेमें लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके इस सिद्धान्तकी पुष्टि हमारे यहाँके प्राचीन शास्त्रोंके इस वचनसे भलीभाँति हो जाती है-" आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः । " अर्थात् आहारको अग्नि पचाती है और जब पेटमें आहार नहीं रहता तब वह दोषोंको पचाती या नष्ट करती है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहनेसे दोषों या रोगोंका नाश ही होता है; निराहार रहनेसे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाशमें लिखा है कि यदि दोष साधारण या मध्यम अवस्थामें हो तो लंघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मतसे लंघनके द्वारा वायुका दोष सात दिनमें, पित्तका दोष दस दिनमें और कफका दोष बारह दिनमें पच जाता है। यद्यपि दोषकी भयंकर अवस्थामें उक्त ग्रन्थके कर्ताने लंघनकी आज्ञा नहीं दी है, तथापि इससे हमारे सिद्धान्त पर किसी प्रकारका दोष नहीं आ सकता। कोई दोष आरम्भ होते ही महाभयंकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्थामें ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचनेमें उसे कुछ समय लगता है। यदि दोषके आरम्भ होते ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय तो निश्चय है कि उस दोषका नाश ही होगा। सुश्रुतके अनुसार तो शरीरको हलका करनेवाली सभी क्रियाएँ लंघनके अन्तर्गत आ जाती हैं और चलना घूमना और व्यायाम आदिको भी लंघनके अन्तर्गत ही माना है। यदि किसी रोगीके पेटमें बहुतसा अन्न हो और उसको वमन या विरेचनके माध्यमसे बाहर निकाल दे तो उसको :

लंघनसे भी कहीं बढ़कर होगी, क्योंकि लंघनकी सहायतासे उतना अन्न पचानेमें उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचनमें लगता है। वायुसेवन और व्यायाम आदिसे भी दोषोंका नाश ही होता है। इन चिकित्साओंको लंघनके अंतर्गत माननेसे लंघनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और उससे सिद्ध होता है कि वह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुतके अनुसार लंघनसे ज्वरका नाश होता है, अग्निका दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लंघनके उपरान्त मल-मूत्रका त्याग उचित रीतिसे हो, भूख प्यास न रही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हो और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीतिसे हुआ है। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करनेके परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वरकी दशामें तो लंघनको सभीने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चरकदत्तने कहा है कि नवीन ज्वरका क्षय लंघनकी सहायतासे करे और आत्रेय ऋषिकी आज्ञा है कि ज्वरके आरम्भमें लंघन कराये। वैद्यकमें वमन, विरेचन, निरूहबस्ति (इन्द्रियजुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकारकी संशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये संशुद्धियाँ ज्वरमें कराई जाती हैं, पर उपवासको शास्त्रमें इन संशुद्धियोंसे कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भट्टने कहा है कि दूषित वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको मन्द कर देते हैं और आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों या रोमकूपोंको आच्छादित करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोषादिको पचाने, जठराग्निको दीप्त करने और शरीरके छिद्रोंको शुद्ध करनेके लिए लंघनकी आवश्यकता होती है। इस अवसर पर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्निको मन्द करते हैं उनके शमनके लिए लंघनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डाक्टरोंने उपवास-चिकित्साका आविष्कार किया है वे उपवास-कालमें रोगीको केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी उपवास-कालमें केवल जल ही देनेका विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उससे सभी दशाओंमें उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यकके ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है [illegible] कि लंघन इस प्रकार कराये कि

जिसमें बलका नाश न हो; क्योंकि आरोग्यता बलके ही अधीन है और यह सब कार्य्यक्रम आरोग्यताके लिए ही है। उपवासचिकित्साके आविष्कर्त्ताओंका भी ठीक यही सिद्धान्त है। सारांश यह है कि उपवाससम्बन्धी सिद्धान्त न तो हमारे आयुर्वेदके लिए नये ही हैं और न हमारे यहाँके उपवाससम्बन्धी सिद्धान्तोंके किसी प्रकार प्रतिकूल ही हैं। आयुर्वेदसे पाश्चात्य डाक्टरोंके उपवास-सिद्धान्तोंका सब प्रकारसे समर्थन और पोषण ही होता है।

प्रकृति और उपवास।

पृथिवीमें उपवास-चिकित्साका आविष्कार, बल्कि यों कहिए कि पुनरुद्धार ऐसे लोगोंने किया है जो अपने जीवनके आरंभ-कालमें बहुत ही दुर्बल रहा करते थे और मुद्दतों तक तरह तरहकी दवाइयाँ करके अपने जीवनसे एकदम निराश हो चुके थे। इन लोगोंने जब देखा कि औषधियोंसे रोग किसी प्रकार दूर नहीं होते और सुना कि औषधिसेवनसे रोगोंकी संख्या और भी बढ़ती है तब उन्हें किसी ऐसी चिकित्सा-प्रणालीकी चिन्ता लगी जो मनुष्यके लिए बिलकुल स्वाभाविक या प्राकृतिक हो और जिसमें लाभके सिवा किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना न हो। इन लोगोंने खोज और परिश्रम करके एक नई पर प्राकृतिक प्रणाली ढूँढ़ निकाली। ज्यों ज्यों उनकी प्रणालीका प्रयोग होता गया और ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ता गया त्यों त्यों उन्हें इस बातके दृढ़तर प्रमाण मिलते गये कि वास्तवमें रोगोंका सबसे अधिक कल्याण केवल उपवाससे ही हो सकता है। अब तो यूरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल उपवास और जल-चिकित्सा आदिसे ही रोगीको चंगा किया जाता है। बम्बईमें डाक्टर बहरामजी फीरोजशाह मादनने भी इसी प्रकारका एक चिकित्सालय खोला है। इन चिकित्सालयोंमें रोगी पर जो अनुभव किये गये हैं उन्हें जानकर बड़ा ही कुतूहल और आनन्द होता है।

साधारण समझका आदमी भी यह बात भली भाँति समझ सकता है कि यदि मनुष्य और विशेषतः रोगीके भूख न हो तो जबरदस्ती खिलानेसे शरीरका बहुत अनिष्ट होता है—उसे बड़ी हानि पहुँचती है। ज्वर, सिरदर्द, अजीर्ण आदि बहुतसे रोगों और यहाँ तक कि मानसिक चिन्ताओंके कारण भी मनुष्यकी

मूल मारी जाती है। उस समय शरीरकी शक्ति बनाये रखनेके उद्देश्यसे जो कुछ अवरुद्धसी मात्रा जाता है वह शक्ति बनाये रखनेकी अपेक्षा उसे बिगाड़ना प्रारंभ कर देता है। उस अवस्थामें मनुष्यको इस बातके मिथ्या भ्रममें न फँस जाना चाहिए कि दो चार रोज भोजन न मिलनेके कारण ही हमारे प्राण निकल जायँगे। हमारे लिए भय या चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी रक्षक है। वह बहुत अच्छी तरह जानती है कि किस अवसर पर क्या होना चाहिए। प्रकृति-देवीकी गोदमें पड़कर सुखी और स्वस्थ बननेका अभ्यास करो, रोगोंके विकास दूर करनेका हेतु या कारण समझो, विषके समान कड़ुई दवाओं और वैसे नशोंके कारण होनेवाले भीषण कष्टोंसे बचने और एक दो दिनके थोड़े शारीरिक कष्ट सहनेका अभ्यास करो और तब देखो कि सब तरहकी दुश्चिन्ताओं और रोगोंसे मुक्त होकर तुम कितनी जल्दी प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते हो। याद रक्खो, हमें जितनी शारीरिक वेदनायें होती हैं वे सब किसी न किसी अंशमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण ही होती हैं। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करता है, प्रकृतिका सेवन करके अपने आपको उसपर छोड़ देता है और कष्टके समय उसे छोड़कर किसीकी सहायता नहीं लेता, वही सबसे बड़ा [illegible] बुद्धिमान और सबसे ज्यादह सुखी है। साथ ही यह भी याद रक्खो कि [illegible] तरहकी दवाइयोंकी पुड़ियाँ खाना, [illegible] पीना, [illegible] लगाना, [illegible] आदि बातें मनुष्यके लिए कभी कल्याणकर नहीं हो सकतीं। शरीरकी सृष्टि प्रकृतिसे होती है और उसका पालन-पोषण तथा रक्षण आदि भी प्राकृतिक नियमानुसार ही हो सकता है, अन्य उपायों या नियमोंसे नहीं। प्रकृतिके [illegible] विरुद्ध बहुत बातें सुनते हैं कि कई बार [illegible] अच्छे हो जाते हैं, पर उन्हें यह बात सुनकर [illegible] औषधियों और [illegible] अवश्य होता है। [illegible]

शरीर और उपवास।

शरीरशास्त्र वेत्ताओंका मत है कि भोजन पचानेके लिए अपने शरीरकी जीवनशक्ति पर हमें उतना ही बोझ डालना चाहिए जिससे हमारे शरीरका काम भलीभाँति चलता रहे। उस पर व्यर्थ और आवश्यकतासे अधिक बोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकारकी आत्महत्या है। यह तो हुई साधारण और निश्चिन्तीके कालकी बात। अब विशेष अवसरों और अवस्थाओंके लीजिए। अपने शरीरको थोड़ी देरके लिए रसोईघर समझ लीजिए और पेटको रसोइया मानिए। यदि अधीर चलनेके कारण रसोईघरमें बहुतसी धूल और गर्द भर जाय, उसकी दीवारोंको दोचार ईंटें गिरा जायँ, उसका छप्पर उड़कर गिर पड़े अथवा इसी प्रकारका और कोई व्यवधान उपस्थित हो तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा? आप पहले रसोईघरके झाड़ बुहारकर गर्द और धूलको साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अंशोंकी मरम्मत करके उसे फिर चलने योग्य कर देंगे अथवा तुरन्त रसोइयेको आज्ञा देंगे कि वह उस टूटे फूटे और गन्दे स्थानमें ही तुरन्त आपके लिए रसोई बनावे! उस समय आप भंडारमें रक्खे हुए गेहूँ, चने, गुड़ या मिठाई आदिसे अपना काम चला लेंगे या रोजकी तरह बढ़िया दाल, भात, कढ़ी, तरकारी, चटनी और रोटी आदिकी आशा रखेंगे? हम पहले ही कह आये हैं कि प्रकृति हमारी सब आवश्यकताओंको समझती है और उसकी पूर्तिके साधन वह पहलेसे ही कर भी रखती है। हमारे शरीरके भीतर चरबी आदि अनेक ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं जो आवश्यकता और अड़चनके समय बड़ी सरलतासे हमारे पेटकी प्रधान आवश्यकताको पूरा कर सकते हैं। यह तो हुई उस समयकी बात जब कि हमारी आँखों और कानोंसे धुआँ मिल चुका हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पहुँच कर अपना निरीक्षण करनेके लिए तैयार बैठा हो। रोग और व्याधि आदिके समय तो उसे अपनी सारी शक्ति दोषोंके नष्ट करनेमें ही लगा देनी पड़ती है। उस समय यदि हम उसमें कोई और काम ले, उसका बल किसी दूसरी तरफ लगावें तो यह कब सम्भव है कि वह हमारे शरीरके दोषोंको बाहर निकालने या नष्ट करने समर्थ होगा? उस अवस्थामें हमें यह उचित है कि

शारीरिक बल और उपवास।

जो लोग सैकड़ों पीढ़ियोंसे दिनमें तीन तीन और चार चार बार भोजन करते आये हों और एकाध दिन भोजन न मिलनेके कारण जिनका शरीर एकदम शिथिल पड़ जाता हो, उनके मनमें उपवासके सम्बन्धमें तरह तरहकी शंकायें उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है। जिस युगके लोग अन्नको ही प्राण मानते हों उस युगमें लोगोंको पखवाड़ों बल्कि महीनोंतक निराहार रहनेके गुण समझमें नहीं समझाये जा सकते। केवल यह कह देना कि महीने पन्द्रह दिन तक निराहार रहनेसे मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग और बलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ट नहीं है। इसपर लोगोंको तरह तरहकी शंकायें हो सकती हैं और इस पुस्तकमें उन शंकाओंका समाधान होना बहुत आवश्यक है। इस स्थल पर उन्हीं शंकाओं पर विचार किया जायगा।

अकाल आदिके समय हम लोग हजारों आदमियोंको बिना अन्नके भूखों मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसी लिए उपवासके सम्बन्धमें सबसे पहले यही शंका हो सकती है कि बिना अन्नके मनुष्य अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखों मरनेमें जो अन्तर है उसका यहाँ बतलाना उचित जान पड़ता है। पहले बतलाया जा चुका है, कि प्रकृतिने हमारे शरीरमें बहुतसा ऐसा सामान भर रक्खा है, जो विशेष आवश्यकताके समय हमारे काम आ सकता है। जब हमें अन्न नहीं मिलता तब हमारे शरीरके उसी फालतू सामानसे हमारा काम चलता है। इस देशमें [illegible] अकालके समय बहुतसे लोग नौ नौ दिन तक [illegible] अन्न और [illegible] रह जाते हैं। बहुतसे लोग इससे भी अधिक दिनों तक [illegible] रहते हैं। [illegible] उनके शरीर [illegible] जाता है, चेहरा [illegible] और [illegible] बैठ जाता है। इस [illegible] मुख्य कारण यही है कि उनके शरीरका फालतू सामान उनके पास न रह जाता है। फालतू अंशके समाप्त हो जाने पर शरीरका पोषण [illegible] होने लगता है जो हमारे शरीरके आवश्यक अंश हैं जिनसे हमारे शरीरका संगठन हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है [illegible] फालतू अंशका समाप्त होने बहुत बाद [illegible] अंश भी [illegible] जाते हैं। जब तक मनुष्यके शरीरके आवश्यक

अंशोंसे पोषणका आरम्भ नहीं होता तब तक मनुष्य बेचैन दुःखी ही होता है, पर आवश्यक अंशोंके पोषणसे कम होनेके उपरान्त उसके शरीरकी टूटी शान्त हो रहती है। उपवासका उसी समय तक माना जाता है जब तक कि शरीरका पोषण उसके फालतू पदार्थों पर होता रहे; पर जब आवश्यक अंशोंकी कमी हो जाय तब वह उपवास नहीं बल्कि भूखों मरना है। आजतक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि केवल दो तीन दिनतक अन्न न मिलनेके कारण ही कोई मनुष्य मर गया हो। उपवासके कारण मनुष्यको नियमित समय पर भले ही थोड़ी बहुत भूख लग जाय और उसके उपरान्त कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे, पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीरके फालतू अंशोंसे हमारा पोषण आरम्भ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। वह व्याकुलता कभी किसी समयमें एक या दो दिनसे अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थितिके उपरान्त जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूपसे बतलाया जायगा, मनुष्यके शरीरके फालतू अंश और उसके साथ रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। उन सबके पच जानेके उपरान्त मनुष्यको एक बार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्यको भोजन न मिले तो फिर उसके शरीरके आवश्यक अंशोंकी बारी आ जाती है और इसके परिणामस्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान्ने उपवास और भूखों मरनेका अन्तर बतलाते हुए कहा है कि—"उपवासका आरम्भ भोजन छोड़ने और अन्त वास्तविक भूखसे होता है और भूखों मरनेका आरम्भ वास्तविक भूख और अन्त प्राण छूटनेसे होता है।"

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए उपवाससे बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीरकी बहुत सी फालतू चरबी और दूसरे पदार्थोंकी समाप्ति हो जायगी। युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुत से लोगोंने केवल उपवासकी सहायतासे अपनी बहुत सी मोटाई कम कर दी है और वे आगेकी अपेक्षा कहीं अधिक सरलतासे चलने फिरने लगे हैं।

उपवासके आरम्भमें हमारा शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है पर उससे शरीरको लाभ ही होता है हानि नहीं। अनुभवसे यह बात भी सिद्ध हो चुकी है

कि उपवासकालमें विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका शारीरिक बल आश्चर्यजनकसे बढ़ जाता है। स्वयं डाक्टर मैकफेडनने, जिनके ग्रन्थसे इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवाससम्बन्धी निजका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर बतलाया जायगा, यह प्रभाव जाननेके लिए एक प्रयोग किया था जो उपवासके कारण शारीरिक बल पर पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके दिन वे जमीन पर चित लेट गये और अपनी दोनों हथेलियों पर उन्होंने कई मन वजनके एक आदमीको खड़ा करके लेटे लेटे हाथोंके बल ऊपरकी ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमीको छातीसे प्रायः तीन ही फुट ऊपर उठा सके थे, पर उपवासके अन्तिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमीको अपनी हथेलियों पर खड़ा करके उसे ऊपरकी ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथोंकी पूरी ऊँचाई तक—छातीसे लगभग दो फुट ऊपर तक—उठ गया। अवश्य ही डाक्टर महाशयने उपवासकालमें व्यायाम नहीं छोड़ा था और नित्य वह दस मीलका चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवासके प्रथम दिन आध मन वजनका डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था, पर इक्कीस दिनोंतक उपवास करनेके उपरान्त उसने वही डंबेल सिरसे ऊपर उसकी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई तक कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास।

कुछ लोगोंका यह शंका हो सकती है कि उपवास-कालमें मस्तिष्कका हाल [illegible] है। [illegible] डाक्टर [illegible] है, कहते हैं कि [illegible] मस्तिष्कका [illegible] है; [illegible] जिनमें [illegible] मनुष्यके [illegible]

तरहकी कलोंका समूह मान लिया जाय, तो मस्तिष्क उन कलोंको चलानेवाला प्रधान इंजिन ठहर सकता है। जीवनकी सारी शक्तियोंका उद्गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहारके कारण उसके कार्य्यमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करनेसे ही लौटती है, चौकेमें जा बैठनेसे नहीं। रातभर आराम करनेके कारण मस्तिष्कको और फलतः सारे शरीरकी गई हुई शक्तियाँ लौट आती हैं और प्रातःकाल मनुष्य कठिनसे कठिन मानसिक या शारीरिक परिश्रम करनेके योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभवसे यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रातःकाल जलपान न करनेवाले लोग जलपान करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक, और रातको भोजन न करनेवाले लोग भोजन करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अधिक और भारी काम करनेमें समर्थ होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि पेटसे व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेनेके कारण मनुष्यकी बहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट होनेसे बच रहती है। खेतों और खानों आदिमें कठिन परिश्रम करनेवाले लोगोंके अनुभवसे भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। यदि पेटमें थोड़ासा भी भोजन हो और मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाय तो पाचन क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूब भरा हो तो मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक दूसरेके लिए वैसे ही बाधक हैं जैसे नींद आनेमें शोर और गुल। भोजनके कुछ समय बाद मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेना चाहिए और मस्तिष्कसे सबसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है, जब कि पेटको अपनी बड़ी चलानेसे फुरसत मिले। अतः यह सिद्ध है कि उपवासमें मस्तिष्कके कामोंमें कोई बाधा नहीं पड़ती बल्कि उलटे और उनमें सहायता मिलती है।

उपन्यासकारोंमें शरीरकी दशा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पूरा हो जानेके कारण मैंने वैसा करनेकी आवश्यकता न समझी। चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खानेकी हुई थी। साधारणतः इस प्रकारकी भूखसे बचनेके लिए मनको किसी दूसरी तरफ लगा देनेसे बहुत लाभ होता है। पर उस दिन मुझे कोई काम न था, दो चार दोस्तोंसे बातचीत करनेके बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक और कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनालयमें जानेके विचारसे चल पड़ा। कुछ दूर चलनेके बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और मैं भोजनालयमें जानेके बदले पासकी एक व्यायामशालामें चला गया और आध घंटे तक मैंने कसरत की। इस समय उपवास छोड़नेकी मेरी इच्छा एकदम जाती रही। अवश्य ही उन दिनों मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखें बहुत धँस गई थीं। पर सातवें दिन मेरे शरीरमें आश्चर्यजनक बल आ गया था। उपवासके मध्यमें तो मैं केवल पचास पाउंडका वजन ही उठाता था, पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ तब सत्तर और अन्तमें सौ पाउंडतकका वजन उठा लिया। उसी दिनसे मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करनेसे शरीरकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।"

जिस इस नामकी एक महिलाको एक बार कैंसर मार गया था। जब अनेक प्रकारके चिकित्साकारोंसे उनका रोग अच्छा न हुआ तब अन्तमें उन्होंने बारहवें दिनों तक उपवास किया, इससे उनका शरीर एकदम निरोग हो गया था। अपने उपवासके सम्बन्धमें वे लिखती हैं —

" उपवासके [illegible] दिन [illegible] मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई। जब कभी मुझे अधिक [illegible] मालूम होती थी तब उसे शान्त करनेके लिए मैं [illegible] [illegible] मुझे [illegible] [illegible]

[illegible]

गई थी। इन्हीं दिनों मुझे आरोग्यदायक वास्तविक सुख मिलने लगा और रीतसे किसी प्रकारकी व्याधि न रह जानेके कारण मैं बिल्कुल निश्चिन्त गई थी।

“ मेरे शरीरका वजन धीरे धीरे बहुत कम होता जाता था और कुछ अधिक री भी मालूम होती थी। मैं समझती हूँ कि यदि मैं जाड़ेके दिनोंमें उपवास ती तो सर्दीके कारण मुझे और भी तकलीफ होती। उपवासकालमें मुझे से बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरी विचार-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उपवासके िम दिन बीत जानेके बाद भोजन करनेके लिए मेरे मित्रोंका आग्रह और भी गया था; क्योंकि उन दिनों मैं देखनेमें बहुत ही दुबली जान पड़ती थी। पर उस ओरसे एकदम निश्चिन्त थी और मुझे भोजनकी कोई आवश्यकता जान न ड़ती थी। कभी कभी मेरी इच्छाके विरुद्ध भी मेरी आँखें झपने लगतीं थीं और मुझे चक्कर सा मालूम होता था। मुझे नींद बहुत अधिक आती थी और मैं स्नानके बाद घंटों ही बिस्तर पर जाकर पड़ जाती थी। उस समय मुझे बहुत अधिक कमजोरी मालूम होती थी।

“ उपवासके बाईसवें दिन मुझे विशेष कष्ट हुआ था। मेरा बायाँ हाथ बिल्कुल बेकार सा हो गया था, जोड़ बहुत अधिक सूज गया था और मुझे उसकी चिन्ताने आ घेरा था। उस समय यह बात मेरी समझमें न आई थी, कि प्रकृति मेरे हाथके दोषको नष्ट कर रही है।

“ उन्तालीसवें दिन डाक्टरने मेरी अन्तिम परीक्षा की। उस दिन उसे मेरा शरीर बहुत ही स्वस्थ जान पड़ा। उस दिन उसने कह दिया कि अब मुझे और अधिक उपवासकी आवश्यकता नहीं है, स्वाभाविक भूख लगनेके [illegible] दिन मैंने [illegible] किया। [illegible]

[illegible] मुझे [illegible] हुई। [illegible] मुझे [illegible] मुझे [illegible] लगने

छाती और मैंने दो दो घंटेके बाद आधा आधा [illegible] [illegible] आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे धीरे मेरी भूख बढ़ती गई। उपवास-कालके बीतनेके तीन मासके बाद मैं इच्छानुसार सब चीजें खानेके योग्य हो गई। तबसे मेरा शरीर बहुत [illegible] नीरोग है और मेरे जिस [illegible] [illegible] मर गया था उसमें पहलेकी अपेक्षा अधिक बल आ गया है।"

[illegible] लोग बहुत आश्चर्य हुए कि डाक्टर [illegible] [illegible] दिनों तक उपवास किया था। उन्होंने अपने उपवासके अन्तिम [illegible] दिनों तक जल भी नहीं पीया था। उपवासचिकित्सकोंका मत है कि जीवनके [illegible] [illegible] [illegible] सकता है [illegible] उसके प्राण नहीं बच सकते। [illegible]

[illegible]

[illegible] बहुत [illegible] है और [illegible]
[illegible] हैं।

[illegible] एक [illegible] किया था। [illegible] दिनों तक [illegible] नहीं किया था। [illegible] था और [illegible] बहुत [illegible] था। [illegible] और [illegible] था। [illegible] है और [illegible] था। [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उपवास कालमें भयके चिह्न।

साधारणतः उपवास-कालमें किसी प्रकारका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। डा० मैकडेगल जोर देकर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियोंमेंसे जिन्हें मैंने लम्बे चौड़े उपवास करवाये, एक भी नहीं मरा, और प्रायः प्रत्येक दशामें उपवाससे सदा लाभ ही हुआ, हानि कभी नहीं हुई। तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हों उन्हें भयके कुछ चिह्नोंका मनन करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

उपवास-कालमें कभी तो रोगोंकी नाड़ी, बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी। यदि साधारणतः नाड़ी एक मिनटमें ६० से ९० बार तक चलती हो तब तो किसी प्रकारकी चिन्ताकी बात नहीं है, पर यदि वह इससे कम या अधिक चले और उपवास करनेवाला किसी योग्य डाक्टरकी देखरेखमें न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह अपना उपवास छोड़ भी सकता है।

उपवास-कालमें यह विश्वास मनसे एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजनके मनुष्यका शरीर चल ही नहीं सकता। इस विश्वासके कारण कभी कभी बहुत हानि हो जाती है। उपवास-कालमें बहुधा रोगीका जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने लगती है। बहुतसे अवसरोंमें इसका मुख्य कारण उक्त मिथ्या विश्वास ही हुआ करता है। दुर्बल हृदयके रोगी पर इस विश्वासका और भी बुरा प्रभाव पड़ता है। उस बुरे प्रभावसे बचनेके लिए उपवास-कालमें इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मन सब प्रकारसे सन्तुष्ट और शान्त रहे, उसमें किसी प्रकारका उद्वेग या चिन्ता न हो। उपवास-कालमें जिन रोगियोंका मन इस स्थितिमें रहता है उन्हें उपवाससे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत शीघ्र आरोग्य हो जाता है।

[illegible]

बिस्तर पर पड़े रहनेकी नौबत आ जाय, तो उस दशामें भी उपवास छोड़ देना ही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि वास्तवमें वह निर्बलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती तो भी यदि रोगी किसी योग्य डाक्टरकी देख रेखमें न हो तो उपवास छोड़ देना ही बुद्धिमत्ता है।

डा० लैंडफोर्डके चिकित्सालयमें बहुतसे ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगोंने केवल अपनी इच्छाके कारण ही आवश्यकतासे अधिक दिनोंतक उपवास किया था। उनमेंसे अधिकांशको उपवाससे लाभके बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवासकालमें पहले शरीरके अनावश्यक और फालतू पदार्थ हमारी जानकारीमें नजर होते हैं और तदुपरान्त शरीरके आवश्यक पदार्थोंकी बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थोंका नाश आरम्भ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जब तक मनुष्य मोटाई बढ़ाने और नया कलेवर धारण करनेके योग्य रहे—उसके शरीरका बल बराबर बना रहे—तब तक उपवास जारी रखना चाहिए, पर जब शरीरका बल घटने लगे तब तुरन्त उपवास छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लम्बे उपवासके बाद भोजन प्रारम्भ करनेमें भी बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है। उपवास जितने ही अधिक [illegible] उतनी ही [illegible] उपवास [illegible] चाहिए, [illegible] जितनेमें अधिक [illegible]

[illegible]

समय होती है जब उपवास छोड़नेके समय भोजनका उचित ध्यान न रक्खा जाय और उसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम हो। उपवास-कालमें यदि भयका कोई चिह्न हो तो एलोपैथिक या होमियोपैथिक चिकित्सा करनेवाले डाक्टरोंसे सलाह लेनेकी अपेक्षा स्वयं अपनी बुद्धिसे काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वयं हमारी प्रकृति ही हमारी सबसे बड़ी रक्षक और शुभचिन्तक है। बहुधा वही हमें समय पर हमारा कर्तव्य बतलाती रहेगी। भयके अधिक चिह्न उसी दशामें उत्पन्न होंगे जब कि उपवास अधिक दिनोंतक किया जायगा। पर साधारणतः कभी अधिक दिनोंका उपवास न करना चाहिए। सब प्रकारके भयके चिह्नोंसे बचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य उसका आरम्भ बहुत थोड़ेसे करे। यदि मनुष्यका शरीर साधारणतः स्वस्थ रहता हो पर उसके अन्दर कोई रोग हो, तो उसे उचित है कि पहले महीने वह एक या दो दिन तक उपवास करे। तीन चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करनेके उपरान्त वह तीन चार दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार साल दो साल बाद वह आठ दस दिन तकका उपवास करनेके योग्य हो जायगा। उस दशामें किसी प्रकारके भयके चिह्नोंके उत्पन्न होनेका कोई कारण न रह जायगा। यह तो हुई साधारणतः स्वस्थ और नीरोग मनुष्योंकी बात। पर यदि मनुष्यको अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोगके कारण ही वह आठ दस दिनोंतक निराहार रह सकता है और उसके शरीरमें भयका कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवासका लक्षण यह है कि मनुष्यका मन बहुत ही स्वच्छ और सन्तुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकारकी घबराहट या बेचैनी आदि न हो। यदि मनमें प्रसन्नताके बदले घबराहट या बेचैनी हो और इच्छा-शक्ति निर्बल पड़ती जाय, तो उपवासकालमें बहुत सावधानीसे रहना चाहिए और यदि उस प्रकार रह सकना असम्भव है [illegible] उपवास चिकित्साकी सम्मति भी न [illegible] है [illegible] है।

नींद और प्यास।

जो लोग उपवास करते हैं उन्हें प्रायः नींद बहुत कम आती है। बहुधा ऐसा प्रतीत पड़ता है कि सारे शरीरके ज्ञान-तन्तुओंमें तनाव आ गया है या खींचतानी हो रही है। मनुष्यको निद्रा उसी समय आती है जब कि उसका सारा शरीर सब प्रकारके तनावसे छुटकारा पा जाय और आराममें हो। पर ज्ञान-तन्तुओंके व्यतिक्रमके कारण शरीरको आराम नहीं मिलता और फलतः मनुष्यको नींद भी नहीं आती। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको उचित है कि वह जल पीवे। जल ठंडा हो या गरम, वह पीनेवालेकी इच्छा और रुचिके अनुसार पिया है। यदि जल पीनेसे कुछ लाभ न हो तो उचित और आवश्यक जल पीनेके साथ पानीमें नहा लेना चाहिए। नहानेसे उस समयके शारीरिक कष्ट दूर हो जायेंगे और शरीरको आराम मिलनेके कारण नींद आ जायेगी। यदि अच्छे बिछौने न हों तो बिछौने दूर फेंक देनेकी चेष्टा करें और उसे बिछौने बिछाकर इस प्रकार सोना चाहिए कि उसका पानी बिछौने पर न पड़े, अन्यथा पेट और नींद दोनों खराब हो जाती हैं। उपवासकालमें नींद न आनेका मुख्य कारण यह है कि इस समय शरीरमें रक्तका संचार बहुत ही कम होता है। कभी कभी पैर बिलकुल ठंडे हो जाते हैं और भारी रजाइयाँ ढकने पर भी उनमें [illegible] नहीं आती। [illegible] पैरों पर [illegible] गरम [illegible] चाहिए। यदि इससे भी अभीष्टसिद्धि न हो तो केवल मात्र पानी [illegible] और इस रजाइयाँ ओढ़ कर पैरों पर [illegible] चाहिए। इससे शुष्क पैरोंमें [illegible] आ जायगी। इस प्रकार पैरोंमें खून [illegible] आयगा और शुष्कता दूर हो जायगी। [illegible] उपवास [illegible] होने पर भी नींद न आने [illegible] है। नींद न आनेके [illegible] है।

[illegible]

भरना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे निश्चिंत नहीं होते। [illegible] होते हैं, जब कि [illegible] हैं। स्वभावतः जिन लोगोंके [illegible] घंटों तक लोगोंसे मुलाकात होती है, [illegible] उनके लिए [illegible] होते हैं। यदि [illegible] निश्चित करते हुए [illegible] लिए [illegible] न करना चाहिए। [illegible] चाहिए। [illegible] और [illegible] और [illegible] और [illegible] है। [illegible] और [illegible] है [illegible] और [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible]

आहार-कालमें भी बहुतसे डाक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजनके साथ कभी जल न पीना चाहिए। पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणतः सब लोगोंको और विशेषतः उपवास कर चुकनेवाले लोगोंको भोजनके साथ और उसके उपरान्त बीचबीचमें भी यथेष्ट जलका व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँके वैद्यकशास्त्रमें जलको अमृत कहा है और उसके विषयमें यह बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशामें कोई हानि नहीं होती। बहुतसे डाक्टर, वैद्य और हकीम आदि ज्वर-कालमें अपने रोगियोंको पानी नहीं पीने देते। पर यह बड़ी भूल है। बहुधा बहुत अधिक पानीसे और कुछ विशेष दशाओंमें थोड़े पानीसे बहुत ही लाभ होता है। पर पानी न पीना सदा हानिकारक ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और नीरोगी, अशक्त और सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जलका खूब सेवन करना चाहिए। अन्नकी अपेक्षा जलमें कहीं अधिक सञ्जीविनी शक्ति होती है। जल सदा शरीरको लाभ ही पहुँचाता है, हानि नहीं।

जलके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास-कालमें जिसका व्यवहार करनेसे बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शुद्ध और साफ की हुई रेत। यह रेत थोड़ी थोड़ी मात्रामें उपवास-कालमें फाँकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फाँकनेका नाम सुन कर हँस पड़ेंगे और यह बात है भी बहुतसे अंशोंमें हँसी आने योग्य ही, पर वास्तवमें रेत फाँकनेका शरीर पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। रेत फाँकनेके गुणोंकी जानकारी पहले पहल बोस्टन नगरके प्रो० विलियम विंसरने प्राप्त की थी। उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला था कि मनुष्यके अतिरिक्त प्रायः सभी जानवर अपने भोजनमें थोड़ी बहुत रेत सदा और अवश्य मिला लेते हैं। इस रेतसे उनकी भोजनवाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और उसके कारण भोजन सुगमतासे बँधकर कब्जियत नहीं उत्पन्न कर सकता। स्वयं डाक्टर वैडकटनने जब यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था क्योंकि रेतका कोई मनुष्यका स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता। पर जब डाक्टर महाशयने [illegible] कई तक हजारों रोगियों [illegible] उसके गुणोंके सम्बन्धमें उनका पहला [illegible]

फेंकनेके लिए रेत ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने गोल और खुरदुरे हों, जो पर्दमें न घुस सके और जो बहुत साफ हो। जिस रेतके दाने नुकीले या धार-दार हों उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए; क्योंकि उससे शरीरके भीतरी कोमल भागोंपर रगड़ लगती है। इसके अतिरिक्त वैसी रेतके दाने परस्पर एक दूसरेके साथ मिल जाते हैं। पर गोल दाने परस्पर एक दूसरेसे अलग रहते हैं और वे ही हमारी कब्जियत दूर कर सकते हैं। उनसे बिना किसी प्रकारकी कठिनाई या कष्टके हमारी अँतड़ियाँ आदि बिलकुल साफ और मल-रहित हो जाती हैं। इस स्थान पर कदाचित यह बतलानेकी कोई आवश्यकता न होगी कि फेंकनेके लिए रेत बहुत ही साफ होनी चाहिए। सफेद रेतकी अपेक्षा भूरे काले रंगकी रेत बहुत अच्छी होती है। यदि रेत साफ न हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। खूब खौलते हुए गरम पानीमें उबालनेसे रेत साफ हो जाती है। अधिकतर दिन भरमें एकसे तीन बजे तक रेत फेंकी जा सकती है। रेत फेंकनेके उपरान्त लगभग बहुतसा स्वच्छ जल पीना चाहिए। उपवास न करनेवाले लोगोंको भी यदि बहुत कब्जियत हो तो वे थोड़ीसी रेत फेंककर और लगभग स्वच्छ जल पीकर अपनी कब्जियत दूर कर सकते हैं। कब्जियत दूर करनेका यह बहुत ही सीधा और सर्वोत्तम उपाय है।

उपवासकालमें एनिमा।

एनिमा उस क्रियाका नाम है जिससे गुदाके मार्गसे अँतड़ियाँ तथा पेटके दूसरे भीतरी भाग धोये जाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सक बहुधा इसका व्यवहार करते हैं और कुछ विशेष प्रकारकी चिकित्सामें औषधीमिश्रित जल गुदाद्वारा पेटमें पहुँचाते हैं। इन चिकित्सकोंको भी एनिमा करते हैं। अँगरेजी दवा बेचनेवालोंके यहाँ तीन चार रुपयेमें एनिमा मिलता है। इस सिरिंजमें पेट और पेडू आदिमें फैला हुआ सारा दूषित और गन्दा जल बाहर निकल जाता है और रोगकी दशा बहुत सुधर जाती है। कब्जियत और अँतड़ियोंकी दूसरी बीमारियोंके समय प्रायः इसका व्यवहार होता है। इस पर्दे यह बात है कि इसके नियम और इसे करनेके लिए कई तरहके प्राकृतिक नियमोंसे काम लेना चाहिए। अप्राकृतिक नियमोंसे काम लेनेका

परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमाका विधान बतलानेके कारण इस पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं। पर इस सम्बन्धमें केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाबकी गोलियों या रेंड़ीके तेल आदिकी तरह एनिमाका कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीरमें अधिक समय तक स्थायी रूपसे रह कर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशामें उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभोंका वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्यके नीरोग होनेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पेशाब साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकारकी कब्जियत हो तो यही माना जायगा कि अभी उसके शरीरमें कुछ रोग बाकी है। एनिमाके व्यवहारसे मनुष्यकी कब्जियत बहुत ही सरलतापूर्वक—बिना उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये—दूर हो जाती है और उसका मल-मार्ग बहुत ही सहजमें साफ हो जाता है। हमारी आँतोंमें यह गुण है कि वे सदा फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचनेके उपरान्त जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहता है वह आँतोंकी इसी फैलने और सिकुड़नेवाली क्रियाके कारण मल-रूपमें हमारे शरीरके बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरम्भ करता है, उस समय भोजनके अभावके कारण आँतोंका सिकुड़ना और फैलना बन्द हो जाता है, जिसके कारण मल हमारे शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतोंके ऊपरका मल ऊपर ही रह जाता है और उसी मलको सरलतापूर्वक बाहर निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग लाभदायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमासे और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीरमें हरदम जो तरह तरहके विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवासकालमें भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहर न निकाले जायँ तो उनका दुष्प्रभाव सारे शरीर पर और विशेषतः रोगग्रस्त अंगोंपर पड़ता है। एनिमासे उन विषोंके बाहर निकालनेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक [illegible] शरीरका ऊपरी भाग स्वच्छ होता रहता है और एनिमा लेनेसे [illegible] और भीतरी अंगोंकी सफाई होती रहती है। [illegible] मलमूत्रादिकी राह बहुत साफ है

जाती है और उनकी जीभ पर जमी हुई पपड़ी हट जाती है और उनकी जीभकी रंगत ठीक वैसी ही गुलाबी हो जाती है, जैसी किसी छोटे नीरोग बालककी जीभकी होती है। साँसमें किसी प्रकारकी बदबू नहीं रह जाती और मुँहका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

कुछ ज्ञातव्य बातें ।

बहुत सम्भव है कि कुछ लोग उपवास करनेको बड़ा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेका प्रयत्न करें। ऐसे लोगोंसे हमारा निवेदन है कि उपवासके लिए पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्बी चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने पीनेमें कोई बड़ा परहेज करनेकी ही। उपवास एक बहुत ही सीधी सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगने पर जल पीनेके लिए किसी प्रकारके सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिए भी किसी प्रकारका सोच विचार न होना चाहिए। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविकल रखनेकी आवश्यकता होती है; जहाँ मनकी उपवाससम्बन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहाँ उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अड़चन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-कालमें किसी प्रकारकी औषधि आदिका कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लन्दनके एक रोगीने चालीस दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमें उसे शरीरके एक ऐसे अंगमें कुछ पीड़ा जान पड़ी, जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी। मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उपवास छोड़नेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोंका रस भी दिया था और उनकी

मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालोंको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-कालमें और उसके उपरान्त शरीरकी हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधों आदिका शरीर पर बहुत ही भयंकर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषध आदिसे करते हैं, बहुधा औषध छोड़ देने पर उनके रोग फिरसे उन्हें कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी सहायतासे नीरोग हो जाने पर रोगके फिरसे उभड़ आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद यदि वह फिर औषधका सेवन आरम्भ कर दे तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल आधा न जन [illegible] तो क्या उससे हमें लाभ न होगा? इसका उत्तर यही है कि बहुत ही छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोड़े भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयंकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि [illegible] हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी आवश्यकता, [illegible] ही अधिक [illegible] होता है। भोजन करके [illegible] पाचनेकी अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। बहुतसे लोगोंने बहुत दिनों तक आधा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उससे कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि उपवास करनेकी अपेक्षा आधा भोजन करते रहना बहुत कष्टप्रद और कष्टप्रद है। उपवासमें तो केवल पहले दो तीन दिनोंमें ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मारी जाती है तब मनुष्य को सुख पूर्वक रहता है [illegible] भोजन करनेवालोंको वह सदा बना रहता है। [illegible] भोजन करनेसे भूख बढ़ती है और तब मनुष्यको [illegible] होकर [illegible] भोजन करना ही पड़ता है [illegible] [illegible]

यह भी ध्यान रहे कि मनुष्यको [illegible] अपना निश्चित काम धन्धा करना चाहिए या नहीं। जिस प्रकार और बातोंमें कुछ छूटें होती हैं उसी प्रकार इसमें भी कुछ छूट रहती है। जिस मनुष्यकी जीवन-शक्ति बहुत ही कम हो गई हो वह यदि अधिक परिश्रम का कठिन और भारी काम करेगा तो असम्भव नहीं उसके शरीर पर उसका बहुत ही बुरा असर पड़ेगा। इसलिए ऐसे मनुष्यको कुछ समय तक विश्राम कर थोड़ा व्यायाम आरम्भ करना चाहिए। जो मनुष्य बिछौनेसे उठ भी न सकता हो वह भी बिछौने पर पड़ा ही अपने शरीरको इधर उधर हिला डुला सकता और इस प्रकार व्यायामके [illegible] थोड़ा-बहुत लाभ उठा सकता है; पर जिस मनुष्यके शरीरमें थोड़ी बहुत शक्ति है उसके लिए व्यायाम अपने काम करनेमें लगा रहना ही अधिक उत्तम है। यह बात याद रखनी चाहिए कि अत्यधिक करनेसे ज्यादा शिथिल शरीर पर बहुत बुरा असर पड़ता है। जिस मनुष्यका [illegible] करनेका ढंग [illegible] शरीर बहुत ठीक रहते हैं [illegible]। [illegible] इधर उधर [illegible] और [illegible] बैठे न पढ़ने वाले काम धन्धेसे बहुत अच्छा व्यायाम मिलता है। [illegible] [illegible] [illegible] धन्धेके [illegible] [illegible] ठीक भी रहते हैं। बहुत ही [illegible] [illegible] होनेके लिए भी काम धन्धेमें [illegible] बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है। [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] और अपने [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए। इस [illegible] पर ध्यान देना भी आवश्यक है कि [illegible] [illegible] [illegible] बहुत [illegible] होता है। [illegible] [illegible] बहुत ही [illegible] जाता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] है, पर इस [illegible] [illegible] [illegible] है कि मनुष्यको [illegible] अधिक [illegible] है। पर यदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिए ही अधिक [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

बड़ा और छोटा उपवास।

उपवास दो प्रकारके होते हैं। एक उपवास तो बहुत दिनोंका और दूसरा उपवास थोड़े दिनोंका होता है। जो लोग बहुत दिनोंके उपवासको उत्तम बतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते,—वे यह नहीं बतलाते कि अधिकसे अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवासकी अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह बतला देती है कि हम एक सप्ताह तक निराहार रहें या एक मास तक। उनका यह भी मत है कि जबतक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे तबतक भोजन न करना चाहिए। भोजनकी वास्तविक रुचि या असली भूखकी निशानी साधारण और अभ्यास-जन्य रुचिसे कुछ भिन्न प्रकारकी होती है और जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशके सामने और सब प्रकारके प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं उसी प्रकार वास्तविक क्षुधाके सामने कृत्रिम या और किसी प्रकारकी क्षुधा बिलकुल ही तुच्छ बोध होने लगती है। उपवास करनेवालेको वास्तविक भूख और खानेकी इच्छा-मात्रका भेद तुरन्त मालूम हो जाता है। इस सिद्धान्तकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप वे लोग उपस्थित किये जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नब्बे दिनोंतकके उपवास किये हैं।

साधारण रोगोंके समय यही बात ठीक जान पड़ती है कि जबतक रोगका जोर बिलकुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भूख लगे तबतक उपवास बराबर जारी रखना चाहिए। जिन लोगोंकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक या शारीरिक दुर्बलताके कारण अधिक दिनोंतक उपवास न कर सकते हों वे बड़े बड़े उपवास न करके छोटे छोटे उपवासोंसे ही बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि छोटे उपवास करके बिलकुल नीरोग और स्वस्थ होनेमें बहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समयतक विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। बड़े और छोटे उपवासके गुण और लाभ अपूर्व निकलेंगे यही उत्तमतासे बतलाये हैं, इस अवसर पर उन्हींका सारांश दे देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। आप कहते हैं,—

"बहुधा लोग [illegible] करते हैं कि [illegible] दिनोंतक उपवास करना [illegible] और [illegible] हो सकता है कि अब उपवास छोड़नेका

रम्य आ गया। मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका। मैंने दो बार बारह दिनोंके उपवास किये हैं। दोनों बार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था इसका कारण यह था कि मैं बारह दिनोंमें ही बहुत दुर्बल हो गया था और मेरी बहुत इच्छा होती थी कि मेरा शरीर बहुत जल्दी फिरसे पहलेकी भाँति सबल हो जाय। यद्यपि उन बारह दिनोंतक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी, तो भी वैद्य डाक्टरोंने मुझसे कहा था कि इन बारह दिनोंके उपवाससे ही तुम्हें बहुत कुछ लाभ पहुँच चुका है। और बात भी वास्तवमें कुछ ऐसी ही थी। मेरी समझमें पाचन-शक्तिके मन्द पड़ने, आँखोंमें मल जमा होने, सिरमें दर्द रहने, कब्जियत होने अथवा इसी प्रकारकी और दूसरी साधारण और छोटी मोटी शिकायतोंके लिए दस बारह दिनोंका उपवास बहुत ठीक होता है। पर जिन लोगोंको नासूर, गरमी, बवासीर, गठिया आदि भारी और भयंकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनोंतक उपवास करना चाहिए।

" यदि कोई मनुष्य एक बार उपवास आरम्भ करे और उपवास-कालमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता या कष्ट बोध न हो तो उसे यथा-साध्य कुछ अधिक समय तक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए। लोगोंको केवल अपनी सामर्थ्य दिखलाने, अपना कुतूहल शान्त करने या दिल्लगी देखनेके लिए कभी बड़ा उपवास न करना चाहिए। बार बार छोटे या बड़े उपवास करना भी ठीक नहीं। यदि किसीको कई बार बराबर उपवास करनेकी आवश्यकता जान पड़े तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी बहुत बुरी आदत या क्रियाके कारण उसका शरीर-संगठन बिलकुल बिगड़ गया है। ऐसी दशामें उसे सब प्रकारके अनुचित कामों और अभ्यासोंको सदाके लिए छोड़कर तब उपवास करना चाहिए। जो लोग दुबले पतले हों उन्हें अधिक दिनों तक कदापि उपवास न करना चाहिए। अधिक दिनों तक उपवास करनेकी शक्तिका आधार मनुष्यके शरीरकी मोटाई है। जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीरमें जितना ही अधिक फालतू द्रव्य मौजूद होगा वह उतना ही लंबा उपवास कर सकेगा। जब तक मनुष्यको स्वयं यह निश्चय न हो जाय कि मुझे केवल बड़े उपवाससे ही लाभ होगा, तब तक उसे कभी अधिक दिनों तक उपवास न करना चाहिए।

जिसे इस विषयमें तनिक भी शंका हो उसे सदा थोड़े दिनोंका उपवास न करना ही उचित है। यदि थोड़े दिनोंके उपवासका अनुभव प्राप्त करनेके उपरान्त भविष्यमें उसे किसी प्रकारका भय या संकट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवासको कुछ अधिक दिनों तक जारी रख सकता है; अथवा आवश्यकता पड़ने पर एक बार उपवास छोड़कर दूसरी बार अधिक दिनोंका उपवास कर सकता है।"

छोटे बच्चोंके लिए उपवास।

छोटे बच्चोंको उपवासमें इतने अधिक लाभ होते हैं जितने वयस्क पुरुषोंको नहीं होते। दुधमुंहे और पालनेमें झूलनेवाले बच्चोंसे लेकर १४-१५ वर्ष तककी अवस्थाके बच्चोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है। बालकोंको बहुधा छोटी मोटी बीमारियां हो जाया करती हैं। यदि माता-पितामें इतना साहस और विश्वास हो कि बालकको किसी प्रकारका छोटा मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बन्द कर दें तो वे रोग देखते ही देखते आश्चर्यजनक रूपसे दूर हो जायँगे। जुकाम और खांसीसे लेकर बड़े बड़े भयंकर चेचक तक सब रोग इस प्रकार बहुत ही सहजमें दूर किये जा सकते हैं।

इस अवसर पर बड़े उपवासोंके सम्बन्धमें यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि चार छह दिनसे अधिक लम्बा उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषतः उपवास-चिकित्सककी सम्मति और देखरेखके कदापि न करना चाहिए। क्योंकि कभी कभी इसके सम्बन्धके पूर्ण नियम आदि न जानने अथवा उनका पालन न करनेसे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है। जो लोग अधिक लम्बा उपवास करना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे किसी उपवास-चिकित्सकके सम्पर्क रहकर अथवा अपने ही [illegible]

[illegible] बालकों [illegible] इतना [illegible] है कि उन्हें [illegible] आवश्यकता [illegible] कोई [illegible] उपवास [illegible] स्वच्छ [illegible] । [illegible] देखो कि

यह कितनी जल्दी नीरोग और स्वस्थ हो जाता है। इस सम्बन्धमें तनिक भी भय या चिन्ताका कभी कोई कारण नहीं है। क्योंकि इससे बढ़कर आश्चर्य-जनक और रामबाण चिकित्सा हो ही नहीं सकती। जो माता पिता एक दो बार भी इस चिकित्साकी परीक्षा करेंगे वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरोंके व्यर्थ भय आदि पर हँसने लगेंगे।

पर यदि किसी बालकके रोगी होने पर महीनों तरह तरहकी ओषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य बिलकुल बिगाड़ दिया जायगा और उसे मृत्यु-मुख तक पहुँचा दिया जायगा, तो उसको बचा लेनेकी शक्ति उपवासमें न दिखलाई पड़ेगी। उस दशामें अपनी मूर्खताका दोष उपवासके मत्थे न मढ़ना चाहिए। हाँ, यदि दूषित उपायोंसे बालकका शरीर बिगाड़ा न गया हो, उसके शरीरमें तरह तरहके विष न भरे गये हों तो अवश्य ही उपवासका चमत्कार देखा जा सकता है। सबसे पहली बात तो यह है कि स्वयं बालकके शरीरमें कभी किसी प्रकारका रोग नहीं होता। या तो वह रोग माता पिताके कुपथ्य और दोषों आदिके कारण हो सकता है और या तरह तरहकी ओषधियों आदिकी सहायतासे उसमें आरोपित किया जाता है। जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित भले आदमीकी प्रवृत्ति चोर डाकू या खूनी बननेकी ओर नहीं हो सकती, उसी प्रकार किसी बालकके शरीरकी प्रवृत्ति रोगी होनेकी ओर नहीं हो सकती। बहुतसी अवस्थाओंमें तो यहाँ तक देखा गया है कि यदि बालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न हो, तो आगे चलकर उसका बाल-शरीर ही उस रोगको नष्ट कर देता है। पर दुर्भाग्यवश हम लोगोंको यह मिथ्या भ्रम हो जाता है कि बालकको सदा भोजनकी आवश्यकता बनी रहती है। रोगी होनेके समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए, यदि उसे नींद न आती हो तो थोड़ी अफीम या और कोई नशीली चीज खिला देना चाहिए, आदि आदि। और इसी भ्रमके कारण हम लोग जान बूझकर बालकोंके शरीरको रोगका घर बना देते हैं।

प्रकृति हमें यह बात बतलाती है कि किसी बालकको जन्म लेनेके उपरान्त कमसे कम तीन दिन तक किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता नहीं होती। साधारणतः प्रत्येक दाई और माता यह बात अच्छी तरह जानती है कि बालकको जन्म लेनेके तीसरे दिन दूध पिलाया जाता है। [illegible]

थोड़ी मात्रामें होता है। पर उसके बाद ही माता या दाई उसे थोड़ी थोड़ी देरके बाद जबरदस्ती अथवा जब जब वह रोता है तब तब उसे दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्थामें ही बालककी पाचन-क्रिया और शक्ति बिगाड़ी जाती है। धीरे धीरे बालक पर भूखका अधिकार बढ़ता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी बुरी आदत लग ही जाती है कि जो आजन्म उसका पीछा न छोड़नेके अतिरिक्त उसे तरह तरहके रोगोंका पात्र बना देती है। छोटे बालकोंको केवल दिनके समय और वह भी कमसे कम दो दो घंटोंका अन्तर देकर बहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध पिलाना चाहिए और रातको कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रोता हो उस समय उसे दूध पिलानेके बदले एक चमचा पानी पिला देना चाहिए। अधिकांश अवसरों पर बालकका रोना उसी पानीसे ही शान्त होगा और वह सुस्त सो जायगा। यह बात चाहे साधारणतः लोगोंके मनमें न बैठे, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि अनुभव करके देखा जाय तो जान पड़ेगा कि [illegible] प्रकार पाले हुए बालकोंमें से ७५ प्रति सैकड़े सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और नींदको काबूमें न रखनेके कारण ही होता है। जिस बालकको आरम्भसे ही भूख और नींदको काबूमें रखनेकी शिक्षा दी जायगी वह वयस्क होनेपर कभी रोगी न होगा।

पर अभाग्यवश आज कलके जमानेमें बहुत ही थोड़े बालक इस प्रकार पाले जाते हैं। प्रायः उन्हें बार बार और इतना अधिक दूध पिलाया जाता है कि पाचन-क्रियाके प्राकृतिक नियमों और प्रेरणाओं आदिका बुरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक कि जब बालक उनकी समझमें कम दूध पीता है तब वह रोगी माना जाता है और उसकी चिकित्साकी चिन्ता होने लगती है, पर जो लोग ध्यान और विचार-पूर्वक उपवासमें होनेवाले लाभोंकी जाँच करते हैं उन्हें मालूम हो जाता है कि बालकोंके प्रायः सभी रोगोंका सम्बन्ध उनके अजीर्ण [illegible] है। [illegible] कभी रोगी नहीं [illegible] विशेषके कारण [illegible] यह प्रधान [illegible] बातोंमें

उपवास किसे न करना चाहिए।

अनुभव और परीक्षासे पता लगा है कि कई रोग ऐसे भी हैं जिनमें उपवास से कोई लाभ नहीं होता। उनमेंसे एक क्षय-रोग भी है। इस रोगमें रोगीकी जीवनशक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि वह अधिक दिनोंतक उपवास कर ही नहीं सकता। ऐसे लोग यदि थोड़ा थोड़ा भोजन करें अथवा छोटे छोटे उपवास करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। थोड़े दिनोंसे ही इस सिद्धान्तकी उपयुक्तताका पता चल जाता है। बहुत ही थोड़ीसी बची हुई शक्तिवाले रोगीके लिए बड़ा उपवास करना कदापि युक्तिसंगत नहीं हो सकता; क्योंकि उपवासके आरम्भमें शक्तिका ह्रास होता है। यदि थोड़ीसी बची हुई शक्तिका इस प्रकार नाश कर दिया जाय तो 'रोग रहे न रोगी' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी। हाँ, यदि उसे पहले एक या दो दिनका उपवास कराया जाय तो पाचनशक्ति और पक्वाशयको कुछ आराम मिलेगा और उससे रोगको पचने और दिनोंके बाहर निकलनेमें कुछ सहायता मिलेगी। इसके उपरान्त उसे थोड़ी मात्रामें ऐसा भोजन देना उचित होगा जो शीघ्र ही पच सके और तदुपरान्त एक दूसरा छोटा उपवास करना ठीक होगा। इस क्रियासे धीरे धीरे उसका शरीर नीरोग होने लगेगा और उसका बल भी न घटने पावेगा।

यदि क्षयके रोगीके आरम्भमें ही उपवास कराया जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। डा० मैकेञ्जीने अपने चिकित्सालयमें कई ऐसे रोगियोंको जिन्हें क्षयरोग आरम्भ हुआ था, उपवास करके चंगा किया है। कुछ अवस्थाओंमें यह भी देखा गया है कि उपवास-काल रोगीके शरीरका जो वजन घट गया, वह नीरोग होने पर फिर न बढ़ सका [illegible] बहुत सम्भव है कि ऐसे रोगी [illegible]

आदिमें कोई सहायता नहीं मिलती । हाँ, जो विष और विकार आदि शरीर-संगठन और बल-वृद्धि आदिमें बाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारोंको उपवास अवश्य ही शरीरके बाहर निकाल देता है ।

जिस युवक अथवा युवतीकी पाचन-शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकारका रोग न हो, जिसका जिगर और फेफड़ा ठीक तरहसे काम करता हो, उसे उपवासकी कभी कोई आवश्यकता नहीं है । जिस मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग हो उसे केवल इसी बातकी आवश्यकता होती है कि वह पथ्यसे रहे, स्वच्छ वायुका सेवन करे और खूब कसरत करे । इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र उपवास ही सब रोगोंको नष्ट करनेका उपाय नहीं है बल्कि उसके लिए शारीरिक संयम, खुली हवा, सूर्यके प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रमकी भी बहुत कुछ आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त सदा नीरोग रहनेके लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ़ निश्चय और प्रफुल्लता आदिकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है ।

उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें ।

जो लोग इस बातकी परीक्षा करना चाहें कि उपवाससे रोगका नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिन तक उपवास करें । उस एक या दो दिनमें ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा, और उस दशामें यदि अच्छी तरह उनको सन्तोष हो जाय तो वे और अधिक दिनोंतक उपवास कर सकते हैं । अथवा यदि उनकी हिम्मत न पड़ती हो तो वे पहले बहुत छोटे छोटे उपवास करें और ज्यों ज्यों उन्हें उनसे [illegible] मालूम होने लगे त्यों त्यों वे अधिक दिनोंके उपवास करते जायँ [illegible] दिनोंतक [illegible] उपवास [illegible] न मिल सकते हों और [illegible] उपवाससम्बन्धी [illegible] जानकारी न हो, उनके लिए इस [illegible] बहुत [illegible] उपयोगी और उपयुक्त है

[illegible] उपवास [illegible] जमी हुई [illegible]

प्रकट हों जिनसे विषोंके बाहर निकल जानेका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवासको अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए। साधारणतः आठ दस दिनके उपवासको योग्य उपवास-चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं। क्योंकि उन आठ दस दिनोंमें भी वास्तविक उपवासके दिन चार या पाँच ही होते हैं; और ऐसे छोटे उपवास बिना किसी प्रकारकी कठिनता या कष्टके ही किये जा सकते हैं। ऐसे अधूरे उपवासोंसे शरीरकी कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती। शक्तिके सम्बन्धमें सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करनेके उपरान्त तुरन्त ही उत्पन्न होती है और न दुर्बलता सदा थोड़ा खानेसे ही होती है, दुर्बलताका मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्तमें मिल जाते हैं।

इस अवसर पर हम एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे उपवासकी परीक्षा भी हो सकती है और आरम्भ भी। जो लोग उपवास पर विश्वास न करते हों अथवा विश्वास करने पर भी जिनमें उससे लाभ उठानेका साहस न हो उनके लिए यह उपाय बहुत ही अच्छा है। ऐसे मनुष्योंको उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिनतक नियमित भोजन करें और तब दो दिनों तक उपवास करके चार दिन नियमित भोजन करें, तदनन्तर वे चार दिन बिना भोजनके रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम बराबर जारी रक्खें। इसमें सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक बार वे जितने दिनोंका उपवास करें, उपवासके उपरान्त उससे दूने दिनोंतक वे भोजन करें। इस प्रकार उन्हें उपवासके लाभ भी मालूम हो जायगे और वे बिना अधिक कष्ट सहे उपवासका अभ्यास भी कर लेंगे। इसके सिवा उन्हें उपवास-कालमें प्रकट होनेवाले अनेक चिह्नों तथा उसके सम्बन्धमें दूसरी बहुतसी आवश्यक और जानने योग्य बातोंका पता भी लग जायगा और वे उस सम्बन्धमें सब प्रकारका अनुभव भी प्राप्त कर लेंगे। इस अवसर पर [illegible] यह भी बतला देना चाहते हैं कि उपवास-कालमें कभी स्वच्छ जलके अतिरिक्त और किसी चीजका बहुत छोटा टुकड़ा या एक दाना भी न खाना चाहिए, नहीं तो भूख उभड़ आवेगी और तब विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पड़ेगा। उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

बहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशामें और प्रत्येक अवसर पर किया जा सकता है। एक नीरोग मनुष्य जब चाहे तब एक या दो प्रकारका भोजन

छोड़कर अच्छा काम चला सकता है। उपवासके समयमें बहुत कुछ पता लगाते लग जाता है। जो मनुष्य यह समझता हो कि मुझे उपवास करनेकी आवश्यकता है, पर वह सीधे या बड़े उपवासोंसे भय खाता हो वह पहले एक वक्त भोजन छोड़े। तदुपरान्त जब उसे बहुत अधिक भूख लगे तब वह एक या दो गिलास साफ गरम पानी पी ले। अथवा एक गिलास ठंडा पानी बहुत ही धीरे धीरे, मानो घूंट घूंट कर पीए। यदि उस समय मुँहका स्वाद कुछ बिगड़ जाय और पानी अच्छा न लगे तो उसमें नीबू या किसी और फलका बहुत थोड़ा सा रस डाल ले। जिस समय मुँहका स्वाद बदला है अथवा भूख न मालूम हो उस समय कदापि भोजन न करना चाहिए। भूखकी सच्ची अच्छी परीक्षा यही है कि मुँहका स्वाद ठीक हो और जो कुछ खाया जाय वह बहुत स्वादिष्ट मालूम हो। भोजन उसी समय अच्छी तरह पचता है जब कि वह सादेसे सादा होने पर भी बहुत स्वादिष्ट जान पड़े। मुँहके अन्दर कुछ विशेष भाग ऐसे हैं जिन्हें अँगरेजीमें taste buds कहते हैं। भोजनका स्वाद उसी समय मिलता है जब कि भोजनका उन भागोंमें सम्पर्क होता है। और उनमें भोजनका सम्पर्क उसी समय होता है जब कि मनुष्यका पाचनयन्त्र खाली और भोजन ग्रहण करनेके लिए तैयार हो। जिस समय पाचनक्रियाके लिए पहलेसे ही बहुत सा काम तैयार हो और उसे नये भोजनके पचानेकी आवश्यकता न हो उस समय मनुष्यको भोजनका वास्तविक स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद हमें यह बतलाता है कि इस समय हमें भोजनकी आवश्यकता है या नहीं।

जो लोग उपवास करते हैं उनके लिए बीचबीचमें यह जाननेकी भी बड़ी आवश्यकता होती है कि अभी उपवास पूरा हुआ है या नहीं। यद्यपि उपवासके समयमें मनुष्यको वास्तविक भूख लगती है और उसे भोजनकी बहुत अधिक आवश्यकता होती है, तथापि इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय हैं जिनसे उपवासकी समाप्तिका पता चल जाता है। कभी कभी उपवासकी समाप्तिसे पहले ही किसी विशेष कारणसे हमें भूख लगनेकी भी सम्भावना होती है और उस समय अनेक इसी बेढ़ंगे ढंगसे यह समझ लेते हैं कि अभी उपवास समाप्त हुआ या नहीं। उपवासके शरीरपर पूरा पूरा असर पड़नेके समय अच्छा चिह्न यह है कि उपवासकालमें जीभ पर जो मैल जमा है वह धीरे धीरे साफ हो जाय और [illegible] इसके [illegible] इसके

अतिरिक्त इस समय मुँहका स्वाद भी बहुत अच्छा और मीठा हो जाता है और नींद बहुत साफ हो जाती है। पहले जो असाधारण और बहुत विलक्षण भूख लगी रहती थी वह मिट जाती है और उसके स्थान पर हल्की और स्वाभाविक भूख उत्पन्न होती है। इस समय बहुत हलके और स्वास्थ्यप्रद भोजनकी ओर ही रुचि होती है, सभी अच्छी बुरी चीजों [illegible] मन नहीं चलता।

कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं जिनमें सर्वथा बीचमें ही उपवास छोड़ देना चाहिए। जिस समय [illegible] चलने फिरने, यहाँ तक कि उठने बैठनेकी भी शक्ति न रह जाय और [illegible] वह इतना निर्बल हो जाय कि सदा बिछौने पर ही पड़ा रहे [illegible] उस समय [illegible] छोड़कर भोजन आरम्भ कर देना चाहिए। इस समय इस बहुत थोड़ा दूध या फलों आदिका रस पीना चाहिए [illegible] । पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए [illegible] उपवास करनेसे बहुधा कृत्रिम दुर्बलता भी हो जाती है। [illegible] समय दुर्बलता आ पड़े और जिसमें [illegible] इस समय थोड़ा भोजन करके उस बैठना चाहिए और [illegible] इधर उधर टहलना चाहिए। [illegible] चेतन्य और [illegible] हो [illegible] । बहुधा ऐसा होता देखे गये हैं जिन्हें पहले [illegible] बहुत अधिक दुर्बलता आ पड़ती थी, पर जहाँ उन्होंने घबड़ाना नहीं और [illegible] उठने बैठनेका प्रयत्न किया [illegible] । ऐसा [illegible] । हाँ, जो लोग [illegible] प्रयत्न करने पर भी उठने बैठनेमें असमर्थ हैं, उन्हें [illegible] । बात बैठने यही है कि [illegible] और [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए ?

[illegible] बहुत अधिक आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए। यदि उपवास छोड़ने के समय किसी प्रकारकी असावधानी या कुपथ्य हो जाय तो उपवासका सब फल नष्ट हो जाता है और कभी कभी उलटे हानि भी पहुँच जाती है। यदि [illegible] ठीक पालन किया जाय तो चिरकाल की कोई रोग नहीं रह जाती और शरीर बिलकुल नीरोग और पुष्ट हो जाता है। उपवास छोड़नेके समय कुछ अधिक सावधानी लेनेसे मनुष्यको सफलता होती है। इस लिए, बहुत दिन भूखे रहकर एक ही बारमें बहुत सा भोजन न कर लेना चाहिए। उपवास छोड़नेके [illegible] इच्छा इतनी अधिक होती है कि उस समय [illegible] अनेक भूल करता है। इसका यह कारण यही है कि [illegible] करनेके उपरान्त भूखका जोर हो इतना अधिक [illegible] मनकी अवस्था ही ऐसी हो जाती है। इस समय [illegible]

" उपवास छोड़नेके समय बहुत सावधानी [illegible] लिये उपरान्त शरीरकी रक्षा नहीं पुनः [illegible] बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इस [illegible] किसी समय। उपवास छोड़नेके उपरान्त [illegible] समय मनकी इच्छा बहुत अधिक सताती है [illegible] खाना आरम्भ कर दें तो उपवास करनेके [illegible] सब नष्ट हो जायँगे। इसलिए उपवास छोड़ने [illegible] चिकित्सक सम्मति लेनी चाहिए, और जिस [illegible] भोजन [illegible] चाहिए और [illegible]

[illegible]

उपवास करता रहे और ज्यों ज्यों उसकी शक्ति बढ़ती जाय त्यों त्यों वह उपवासकी मुद्दत भी बढ़ाता जाय। जो लोग दुर्बल होते हैं वे आरम्भमें अधिक लंबे उपवास नहीं कर सकते, पर यदि वे धीरे धीरे अपने उपवासकी मुद्दत बढ़ाते जायें तो आगे चल कर अधिक उपवास कर सकते हैं।

प्रत्येक उपवास करनेवालेको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि छोटे या बड़े प्रत्येक उपवाससे होनेवाला लाभ उपवास छोड़नेके प्रकार पर ही अवलम्बित रहता है। जिस प्रकार कोई बहुत दुःसाध्य रोग [illegible] बहुत धीरे धीरे [illegible] जाता है उसी प्रकार उपवास भी बहुत धीरे धीरे छोड़ना चाहिए। उपवास छोड़नेके [illegible] [illegible] कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] ?

[illegible]

जाती है और यही कारण है कि उपवासकी समाप्ति पर उसके लिए एक दमसे सारी या अधिक भोजन पचा लेना असम्भव होता है। शरीरके भीतरी भागसे निकलनेवाले पाचक रसोंकी मात्रा चार पाँच दिनों बाद कुछ कम होने लगती है। इसलिए चार दिनोंतकका उपवास करनेवाले लोग उपवासके उपरान्त नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगोंको उस भोजनसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त भी बिना किसी प्रकारकी जोखिम सहे नियमानुसार भोजन कर लेते हैं, पर तो भी सर्व साधारणको इसके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगोंका उपवास छोड़नेके दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगनेके कारण बेचैनी हो उनकी बेचैनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायगी और शरीरको किसी प्रकारकी हानि भी न पहुँचेगी। उपवास छोड़नेके पाँच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरम्भ किया जाय तब कुछ दिनों तक इस बातका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और सादगी कम हो। जीभके स्वाद अथवा और [illegible] के लिए कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणतः उपवासचिकित्सासे जब एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास करनेवालेका उपवास छुड़ाया जाता है, तब पहले दो दिनों तक उसे केवल फलोंके रस ही देते हैं और तब [illegible] दिनसे दूध आरम्भ करते हैं। तीसरे दिन दो दो घण्टे पर और चौथे दिन एक एक घंटे पर एक गिलास [illegible] दिया जाता है। पाँचवें और छठे दिन इसी प्रकार अन्तर कम किया जाता है और ज्यों ज्यों उपवास करनेवालेकी [illegible] बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसे अधिक दूध [illegible] जाता है। [illegible] तीसरे शरीर भी बहुत [illegible] हो दिनमें दो दो [illegible] तीसरे [illegible]

[illegible]

[illegible] न सकते हों उन्हें बहुत ही अल्प मात्रामें चौथे या पाँचवें दिनसे अपना नियमित भोजन आरम्भ करना चाहिए। जो लोग चार दिनोंतकका उपवास कर चुके हों उन्हें भी अपना नियमित भोजन आरम्भ करनेके समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि जिस दिन वे भोजन आरम्भ करें उस दिन दोहरे आकार भोजन करें। जो लोग एकसे दो सप्ताह तकका उपवास कर चुके हों उन्हें भोजन आरम्भ करनेके दिन नियमके भोजनका पाँचवाँ भाग खाना चाहिए; उसके दूसरे दिन नियमके भोजनका तीसरा भाग, तीसरे दिन आधा भाग और चौथे दिन नियमी कुछ कम खाना चाहिए। पाँचवें दिनसे यदि वे नियमित अपने भोजन करें तो कोई हानि नहीं है। उपवासके उपरान्त जो कुछ कम खाना उसे बहुत ही सरल और आनन्दमय होना चाहिए। जिसने ही सरल भोजन किया उसका उसमें ही अधिक स्वाद मिलेगा।

[illegible] इस उपवास [illegible] के [illegible] [illegible] प्रकाश डाला है। [illegible] अपने निजी अनुभवके अनुसार लिखते हैं—

[illegible]

जितनी अधिक बढ़नी चाहिए थी उतनी उससे न बढ़ी थी। लगातार दो दो सप्ताहों तक चावल और अंडा खाते रहनेसे पैखाना बिलकुल नहीं होता था।

"मेरा अनुभव यह है कि उपवासके उपरान्त पाचनतंत्र बहुत ही दुर्बल जान पड़ता है और उस पर बहुत ही शीघ्र हानिकारक प्रभाव पड़नेकी सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त उस समय आँतोंकी शक्ति भी बहुत कम होती जाती है। इसलिए उस अवसर पर ऐसा भोजन पसन्द करना चाहिए, जो बहुत जल्दी हजम हो सके। साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि जब तक आँतोंमें सारतत्त्वका सब बहुत निकालनेकी पूरी पूरी शक्ति न आ जाय तब तक तरिमाका उपयोग बराबर जारी रखना चाहिए। उपवास छोड़नेके समय पहले दो या तीन दिनोंतक उबले सीधे बीजू या अंगूरके रस पर रहना चाहिए और तदुपरान्त दूसरा सरल आहार ले लेना चाहिए। उस समय पहले [illegible] सरल दूध पीना चाहिए। यदि बेचैन दूध अच्छा न लगता हो तो साथ अंगूर, खजूर या आलू भी लिया जा सकता है। यदि आवश्यकता हो तो चावल, दाल और शोरबे आदिका व्यवहार भी आरम्भ कर देना चाहिए, पर उसके साथ ही साथ एनिमा लेना भी मुल्तवी न करना चाहिए। मैंने [illegible] उपवास छोड़े हैं, मुझे निश्चय हो गया है कि उस समयके लिए दूध बहुत और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है।"

[illegible]

बहुत अधिक भूख लगने पर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो चार दिनोंतक नहीं बल्कि दो तीन सप्ताहों तक रहना चाहिए।

डाक्टर हरबर्ट केरिंगटन उपवासचिकित्साके बहुत बड़े ज्ञाता और पंडित माने जाते हैं। उपवास छोड़ने और उस समय भोजन करनेके सम्बन्धमें आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझकर हम इस स्थान पर उसका आशय दे देते हैं:—

" उपवास छोड़नेकी क्रिया मेरी समझमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। क्योंकि यदि उपवास छोड़नेमें किसी प्रकारकी असावधानी की जायगी तो उपवासमें उत्पन्न अधिकांश लाभ प्रायः बहुत कम हो जायँगे। जिन लोगोंको उपवास-सम्बन्धी विशेष अनुभव है वे यह बात भलीभाँति समझते होंगे कि उपवास छोड़नेके समय कितनी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभवके अनुसार इस सम्बन्धमें कुछ बातें बतलाता हूँ।

"उपवासमन्दिरी सबसे बड़े इस नियमका ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि प्रकृति हमें स्वयं यह बतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए। इस सम्बन्धमें हमारे शरीरमें कुछ विशेष और स्पष्ट चिन्ह प्रकट होते हैं जिनसे कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है,—

(१) उपवासकालमें शरीरकी जो गरमी साधारणसे अधिक अथवा कम हो जाती है, वह उपवास छोड़नेके समय अपनी ठीक (Normal) अवस्थामें आ जाती है।

(२) उपवासकालमें जीभ पर जो परतें जमी होती हैं वह धीरे धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(३) उपवासकालमें नाड़ी अधिक स्थिरतासे अपना धर्म चलाती है, पर उपवास छोड़नेके अवसरका होने पर वह अपने नियमित रूपसे चलने लगती है।

(४) उपवासकालमें जो मन दुःखपूर्ण रहता है वह उपवास पूरा होने पर अत्यन्त शान्त और प्रसन्न हो जाता है।

(५) लगभग सभी शरीरके दूसरे अंग जो पहले विशेष या न्यून रीतिसे काम करते थे, वे अपनी साधारण स्थितिमें आकर पूर्णरूपसे काम करने लगते हैं।

(६) अन्तिम और सबसे बड़ा चिह्न यह है कि भूख नियमित होती और अपनी साधारण अवस्थामें लगती है, कृत्रिम भूखकी तरह विशेष रूपसे नहीं लगती।

" कई दिनों तक किसी प्रकारका भोजन न करनेके उपरान्त जब शरीर अपनी साधारण अवस्थामें पहुँच जाता है तब उक्त चिह्न प्रकट होते हैं।

" इस अवसर पर प्रश्न हो सकता है कि वास्तविक और कृत्रिम भूखकी पहचान क्या है? इसकी अवस्थाओंमें हम अनुभव कर सकता है कि कुछ भूख आती है इसलिये पेटको भोजनकी वास्तविक आवश्यकता है, पर दूसरेको वैसी आवश्यकता नहीं होती। सभी दशामें यह किस प्रकार जाना जा सकता है कि इसलिये किसे भोजन दिया जाना चाहिए और किसे नहीं।

'इसलिये वास्तविक और कृत्रिम भूखको पहचाननेके लिए उपवास कुछ अवस्था [illegible] नहीं पहचान [illegible] है [illegible] भूख लगती है इस समय [illegible] है। यह [illegible] चिह्न का [illegible] है [illegible] चिह्न प्रकट होते हैं, [illegible] होते हैं [illegible] है। [illegible] चिह्न [illegible] है। वह [illegible] चिह्न [illegible] होते हैं [illegible]

" [illegible] है [illegible] है [illegible]

" इस अवसर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक वास्तविक भूखके चिह्न प्रकट न हों तब तक उपवास करनेमें कोई जोखिम तो नहीं है ? उपवासलक्षणके चिह्न उत्पन्न होनेसे पहले ही उपवास करनेवाला मर तो न जायगा ? इस प्रश्नका बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि, ऐसा कदापि न होगा। इसमें न तो किसी प्रकारकी जोखिम है और न जान जानेका भय है। जोखिम अथवा मृत्युकी अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूखके चिह्न अवश्य प्रकट हो जायँगे। बात यह है कि अन्नके बिना मरनेसे पहले कुछ समय तक मनुष्यका शरीर धीरे धीरे गलता रहता है और उस अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग आती है।

" जो लोग बिना अन्नके भूखों मरते हैं उनके शवकी परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरनेके समय उनके शरीरमेंसे नीचे लिखे पदार्थ इतने मात्रामें घटते हैं—

चरबी	.....९७	सेर
ऊतु (Tissues)	...३०	"
कलेजा (Liver)	..५६	"
तिल्ली (Spleen)	...५३	"
और खून वगैरह	.....१७	" कम होता है।

" [illegible] (Nervous system) का कोई [illegible] नहीं होता। इस कथनके प्रमाण शरीर-शास्त्रके प्रसिद्ध प्रमाणिक ग्रन्थमें मिल सकते हैं।

" [illegible] इस बातका पता लग जाता है कि उपवास-कालमें शरीरका [illegible] कम होता है, जिससे उसके [illegible] शरीरके [illegible] बहुत ही कम होता है। यह [illegible] है। इसके अतिरिक्त [illegible] और भी [illegible] होते हैं, जिनसे उपवास-कालमें शरीरका पोषण होता है और [illegible] होनेका प्रयत्न करता है।

" [illegible]

निश्चित भोजन होना चाहिए जो उनके शरीरके लिए लाभदायक और पुष्टिकर हो। मेरी समझमें उपवास छोड़नेके समय इस प्रकार भोजन आरम्भ करना चाहिए,—

" **पहला दिन**—जब उपवास छोड़नेका समय आवे और उसकी समाप्तिके सब लक्षण दिखाई दें उस समय उपवास करनेवालेको एक गिलास सन्तरेका पतला रस पीना चाहिए। यदि वह कुछ गाढ़ा हो तो उसमें थोड़ा पानी भी मिला लेना चाहिए। इसी प्रकारके और दूसरे फलोंका रस भी लिया जा सकता है, पर वह रस न तो बहुत ठंडा होना चाहिए और न उसमें चीनी मिली होनी चाहिए।

" **दूसरा दिन**—रोगीको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पेटमें अधिक पदार्थ न चला जाय, क्योंकि उस दिन भूख बहुत लगती है और भोजन हम धारण कर लेता है। उस समय इच्छा और भूखको वशमें रखनेकी बड़ी आवश्यकता होती है। यदि उस समय विशेष सावधानी न रक्खी जायगी तो परिणाम बहुत ही भयंकर होगा।

" दूसरे दिनके लिए सबसे अच्छी खोराक सन्तरा है। खजूर और अंजीर आदि और अवसरों पर भले ही लाभदायक हों पर उपवास छोड़नेके समय उनका व्यवहार करनेकी सम्मति मैं नहीं देता। दूसरे दिन जहाँ तक हो सके एक ही फल खाकर काम चलाना चाहिए। यदि एक फल खाकर न रहा जाय तो एक और खा लेना चाहिए—इससे अधिक नहीं।

" **तीसरा दिन**—उपवास छोड़नेके दो ही तीन दिन बाद तक बहुत सावधानीकी आवश्यकता होती है। इसके बाद यदि दिन पर दिन भोजन बढ़ाया जाय तो कोई हानि नहीं होती। तीसरे दिन एक आध रोटी, थोड़ी तरकारी और एक गिलास गरम दूध तक लिया जा सकता है। उस दिन एक तो भोजन बहुत सादा होना चाहिए और दूसरे मात्रामें भी कम होना चाहिए।

" उपवास छोड़नेके उपरान्त बहुधा दूध ही सबसे अधिक उपयुक्त और लाभदायक होता है। उपवास छोड़नेके दूसरे दिन जो दूध पीया जाय वह इतना ही गरम हो कि उससे मुँह न जले। दूध एक एक घूँट करके और बहुत धीरे धीरे पीना चाहिए। हर एक घंटे बाद एक गिलास दूध पीया जा सकता है। तीसरे दिन हर घण्टे पर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूधसे शरीरका बल भी बढ़ता है और वजन भी। शरीरके लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशामें इससे लाभ ही होता है, हानि कभी नहीं होती।"

दिन रातमें एक बार भोजन ।

[illegible]

आनन्दपूर्वक भोजन करते थे। दिन भर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करनेके कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते थे। उनका रूखा-सूखा, हलका और थोड़ा भोजन उनके शरीरके पोषण और बलवृद्धिके लिए यथेष्ट होता था,-रोग, आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करनेके लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजनके उपरान्त संगीत, नृत्य, और हास्यविनोद आदिका आरम्भ होता था और यही सब बातें उन दिनों आज कलके सुलेमानी नमक और हिंगाष्टकी गोलियोंका काम देती थीं। कुछ जातियोंमें केवल दिनके समय ही खानेकी प्रथा थी। उन लोगोंका मुख्य भोजन आठ पहरमें केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रामें, जितनी मात्रामें आज कलके लोग 'जलपान' करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्तिका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज है जो सबको और कभी प्रवृत्तिको भी दबा लेती है। आप दिन भरमें पसेरी भर अन्नका भी सत्यानाश कर सकते हैं और डेढ़ पाव या आध सेरमें भी आपका निर्वाह बहुत मजेमें हो सकता है। इसमें आवश्यकता है केवल अभ्यासकी। यदि आप आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका अभ्यास करेंगे अवश्य ही आपकी भूखसम्बन्धी प्रवृत्ति और सहज-बुद्धिका थोड़े समयमें नाश हो जायगा और आप उस अभ्यासके वशीभूत हो जायँगे। यदि बहुत ही छोटी अवस्थाके दो बालक भिन्न भिन्न दाइयोंको दे दिये जायँ और उनमेंसे एक दाई बहुत थोड़ी थोड़ी देरके बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूपसे दो दो या तीन तीन घंटोंके बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाईका बालक-चाहे बीमार ही क्यों न हो जाय-हर दम दूधके लिए रोया करेगा; पर जिस बालकको नियमित रूपसे छः या आठ बार दूध पिलाया जायगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायगा। इसका कारण यही है कि अभ्यासके कारण उसकी प्रवृत्ति, इच्छा और सहज-बुद्धिका नाश हो जायगा, और इस नाशका परिणाम सदा घातक और अत्यन्त हानिकारक ही होगा। उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा।

बहुधा हम लोग देखा देखी करते हैं कि नागरिकोंको देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुतसा घी-चीनी, पूरी-पकवान, मेवा,

मिठाई, मांस-मछली और पूआ-पकौड़ी खाया करते हैं, पर सदा रोगी और दुर्बल ही बने रहते हैं। लेकिन देहातवाले बाजरे, जौ और मकईकी सूखी रोटी खाकर इतने नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं कि यदि वे चाहें तो दो एक नागरिकोंको बड़े आनन्दसे बगलमें दबाकर कोस दो कोसका चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे स्वच्छ वायुमें रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजनके समय तक उन्हें खूब गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रातःकाल चार बजे उठकर अपनी गौओं-भैंसोंके सानी-पानीका सब प्रबन्ध करेगा और ग्यारह बारह बजेतक या तो एकाध बीघा खेत जोतकर रख देगा और या घी दूध, नमकतेल, खोआ आदि बेचनेके लिए घर बैठे बैठेके किसी शहरका चक्कर लगा आवेगा। घरमें ही वह थोड़ेसे भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँच कर थोड़ी देर तक सुस्तानेके बाद फिर किसी शारीरिक परिश्रमने लग जायगा। ऐसी दशामें सन्ध्या या रातके समय उसे एक तेज भूख लगना बहुत ही स्वाभाविक है और तेज भूख लगने पर जो कुछ खाया जायगा वह अवश्य ही बहुत अच्छी तरह पच कर हमारे शरीरमें लगेगा और हमारे अंगप्रत्यंगको पुष्ट करेगा। शहरके रहनेवाले सबेरे उठते ही स्नान आदिसे निपटकर होकर बैठकर पढ़ने, मानों रात भर उन्होंने चक्की ही पीसी हो। जलपानके उपरान्त वे हाथमें या तो ताश, शतरंज या सितार आदि उठा लेंगे और या अपने मकानके बैठकखाने अथवा दूकान पर जा बैठेंगे। [illegible] [illegible]

बहुत अच्छी तरह इसका अभ्यास कर सकते हैं और बालकोंको दस वर्षकी अवस्थातक सहजमें इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डा० टिड्डन नामक एक विद्वान् अपने बालकोंको दिनमें कभी किसी प्रकारकी चीज खानेके लिए नहीं देते थे और प्रायः कहा करते थे कि बिना दिन भर काम किये भोजनकी इच्छा करना ठीक वैसा ही है, जैसा कि किसी कारीगरका बिना दिन भर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी माँगना।

मनुष्योंको बहुतसे रोग ऐसे होते हैं, अधिक भोजनके अतिरिक्त जिनका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगोंको जो अधिक भोजन करके ही अपने शरीरको रोगी बनाते हैं दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेसे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। एक बार भारतमें एक पादरी महाशय ज्वरसे बुरी तरह पीड़ित हुए। सात महीने तक डाक्टरोंने उनका शरीर दिनमें तीन बार भोजन, छः बार औषध और कदाचित् इससे भी अधिक बार दूध, और ह्विस्कीसे खूब भरा। यहाँ तक कि अन्तमें वे सूख कर काँटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिकाको चले गये। वहाँ सौभाग्यवश उनकी भेंट एक योग्य उपवास-चिकित्सकसे हो गई। उपवास-चिकित्सकने उन्हें दिन रातमें केवल एक ही बार भोजन देना आरम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें उनकी सारी शिकायतें दूर हो गईं। चार महीनेके अन्दर ही वे बहुत हृष्टपुष्ट हो गये और तौलमें आध मन बढ़ गये। वहाँसे नीरोग होकर वे फिर भारत चले आये और खूब परिश्रम करके दिन रातमें केवल एक ही बार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे चार वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीचमें वे या उनके परिवारके लोग भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनमें एक बार डा० रैबेन्स्टेनने एक ऐसी बालिकाका हाल सुनाया था जिसकी अवस्था चार वर्षकी थी और जिसके दाहिने घुटनेमें भयंकर Tuberculosis हो गया था। उस बालिकाके दिन रातमें चार बारके बदले केवल एक बार भोजन दिया जाने लगा, दूध और रसके [illegible] उसे थोड़ा [illegible] दिया जाता था। उस बालिकाके और भी कई भयंकर रोग थे। पर [illegible] उसके सब रोग [illegible] और वह [illegible] चार मेरके बदले [illegible]

योग्य है कि Tuberculosis एक ऐसा रोग है, जिसका अच्छा होना प्रायः असम्भव समझा जाता है और जो रोगीके प्राण बिना लिये छूटता ही नहीं।

इंग्लैण्डमें एक बार एक स्त्रीके गर्भमें पयरीकासा एक रोग हो गया और उसमें कई सेर तौलकी एक गाँठ पड़ गई। उसका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था, दिनरात सिरमें दर्द रहता था, कब्जियत थी, कै आती थी और इसी तरहकी बीसियों शिकायतें थीं। शस्त्र-चिकित्सा करके उसके गर्भकी गाँठ तो निकाल दी गई थी, पर उसकी दुर्बलता और दूसरी सब शिकायतें बराबर बढ़ती ही जाती थीं। जब उसके बचनेकी कोई आशा न रही तब उसे दिन रातमें दो बार भोजन दिया जाने लगा। पर जब उसमें कुछ लाभ न हुआ तब केवल एक बारके भोजनकी ठहरी। इससे उसकी सारी शिकायतें दूर होनेके सिवा छः सप्ताहमें उसका वजन तीन सेर बढ़ गया। जुलाई १९०१ में उसकी अन्न-चिकित्सा हुई थी और दिसम्बरमें वह पूर्णरूपसे नीरोग और अपने सब काम करनेमें समर्थ हो गई थी। यदि वह औषधों और भोजनके सहारे ही रक्खी जाती तो इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वह उन्हींका शिकार बन जाती।

जलपान न करना।

यदि आरम्भमें ही आप एक दमसे दोपहरका भोजन न छोड़ सकें तो कमसे कम सबेरेका जलपान या कलेवा करना अवश्य छोड़ दें। इससे होनेवाले लाभ भी अपेक्षाकृत कुछ कम नहीं हैं। इस अवसर पर हम अपनी ओरसे कुछ अधिक न कहकर प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डेरिंगके अनुभवका सारांश यहाँ पर दे देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। आपने लिखा है—

"जिस दिन मैंने पहलेपहल जलपान छोड़ा था उस दिन मेरा शरीर और मन इतना हलका और प्रसन्न हुआ जितना कभी बाल्य या युवा अवस्थामें भी नहीं हुआ था। दोपहरके समय खूब भूख लगने पर मैंने बहुत अच्छी तरह भोजन किया। उस समय भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ता था। एकमात्र सायंकाल बाद प्रातःकाल कभी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। सोना छोड़ देनेसे

मिला नहीं है, जिससे कि उसकी समाप्ति पर ही भूख लग आवे । हजारों ऐसे आदमी हैं, जिन्होंने अपना प्रातःकालका जलपान छोड़ दिया है और थोड़े ही दिनों बाद जिन्हें कभी उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी । यदि जलपान आवश्यक होता तो यह बात कभी न होती; क्योंकि प्रकृति अपनी आवश्यकताको पूरा किये बिना कभी नहीं मानती । यह कदापि सम्भव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकताको बिना पूरा किये ही अथवा थोड़े भोजन पर ही हमारे शरीरको बिलकुल ज्योंका त्यों बनाये रक्खे । जो जलपान तुम बिना आवश्यकताके और केवल अपने अभ्यासके कारण करते हो, वह बड़ी सरलतासे तुम्हें उसके छोड़ देनेकी आज्ञा दे सकती है । पर यदि तुम उसकी आवश्यकताओंको पूरी तरहसे पूरा न करोगे तो आगे चलकर तुम्हें उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा ।

" जलपान करना छोड़ दो और जब तक खूब तेज भूख न लगे तब तक कभी कुछ मत खाओ । जब तुम उस भूखके आसरे रहोगे तब अवश्य ही वह अपने समय पर उपस्थित होने लगेगी । उस अवसर पर तुम स्वयं ही यह निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितनी खानी चाहिए । जब तक भोजनकी पूरी पूरी आवश्यकता न हो तब तक कोई भोजन बल-वर्द्धक और स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता । वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करनेके लिए खूब तेज भूख, खूब स्वादिष्ट लगनेवाले सादे भोजन, खाद्यपदार्थोंको बहुत अच्छी तरह चबाने और पचानेके समय मनको खूब शान्त रखनेकी आवश्यकता होती है ।

" बिना जलपान किये अपने काम पर जाओ, दोपहरके भोजनके समय तुम्हें खूब तेज भूख लगेगी । [illegible] यदि तुम भोजनसे पहले किसी प्रकारका [illegible] खाने [illegible] भूख [illegible] तुम्हें [illegible] उसके [illegible]

यदि परिवारमें एक मनुष्य प्रातःकालका जलपान करना छोड़ देगा तो उससे होनेवाले लाभोंको देखकर सम्भवतः परिवारके और लोग भी बहुत ही शीघ्र अपना अपना जलपान छोड़ देंगे। जलपान न करनेवालोंका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, उन्हें जल्दी कभी किसी तरहकी शिकायत नहीं होती। अमेरिकावालोंकी देखादेखी युरोपवाले भी जलपान न करनेके गुण समझने लगे हैं। अभी हालमें इंग्लैण्डमें एक स्वास्थ्यसंवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जलपानकी प्रथा रोकना है। जिस दिन उस सभाकी स्थापना हुई उस दिन उसमें नगरके बहुत बड़े बड़े अधिकारी, रईस और विद्वान् इकट्ठे हुए थे। यह सभा [illegible] मैंचेस्टर नगरमें हुई थी। उस अवसर पर वहाँके 'मैंचेस्टर गार्डियन' नामक प्रसिद्ध पत्रने लिखा था—" आज मैंचेस्टर नगरमें पहले दिनोंकी अपेक्षा सैकड़ों जलपान कम हो जायेंगे और यहाँकी स्वास्थ्यसभा थोड़े ही घंटोंमें अपनी स्थापनाका शुभ फल देख लेगी। सम्भवतः इसकी देखादेखी 'जलपान' का निषेध करनेवाली सैकड़ों सभाएँ स्थापित होंगी। लोगोंका बहुत सा समय केवल जलपान तैयार करनेमें ही लगा करता है। स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढ़ाने और मुख [illegible] इससे अच्छा और कौनसा काम हो सकता है? सदा सदाके लिए बचने और प्रत्येक [illegible] मुक्त होनेका इससे अच्छा और कौनसा उपाय हो सकता है? [illegible] इससे अधिक उपकारक और कौन सी बात हो सकती है? यदि प्राकृतिक नियमोंका पालन किया जाय और अपने शरीरको अवसर दिया जाय तो अवश्य ही वह अपनी सारी मरम्मत आप ही कर लेगा। और यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथाकी पुनरावृत्ति है। यह [illegible] कोई पेटेंट दवा नहीं है, बल्कि इसमें जीवनकी रक्षाका [illegible] उपाय है। इस नये उपायसे उन सारे दुष्ट उपायोंका नाश होगा, जिनके कारण शरीर [illegible] उपायोंका सहारा लेकर कष्ट सहने पड़ते हैं।"

[illegible] "[illegible] बिना जलपानके [illegible] है—[illegible] एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकमें [illegible] एक स्थान पर लिखा है—" [illegible] लिखा है, [illegible] यह है कि [illegible] है और

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कदाचित् यहाँ इस बातको विशेष रूपसे सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता न होगी कि मांस खानेवालोंकी प्रकृति बहुधा उग्र उद्दण्ड और हिंसक हो जाती है और फलतः वे लोग क्रूर, निर्दय और अत्याचारी हो जाते हैं। मांसाहारियोंके कारण दूसरे मनुष्यों और जीवोंको बहुत कुछ अत्याचार सहना और पीड़ित होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप शेर और गौ, बाज और तोते, पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल-प्रयोग आदिकी गणना गुणोंमें की जा सकती हो तो अवश्य ही मांसाहार भी उत्तम और प्रशंसित हो सकता है, अन्यथा वह इसके विरुद्ध प्रमाणित होगा। कुछ लोग मांसाहारके पक्षका समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्यको अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और अपना अस्तित्व बना रखनेके लिए ही मांसाहारी होना बहुत आवश्यक है। इसी कोटिके एक सज्जनने एक बार अपने पक्षके समर्थनके लिए लेखकको किसी आर्य ग्रन्थका इस आशयका एक मंत्र सुनाया था कि सृष्टिका यह परम्परागत नियम है कि 'चार पैरोंवाले दो पैरोंवालोंको खायें और दो पैरोंवाले बिना हाथ-पैरवालोंको खायें।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक सबल अपनेसे निर्बलको खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने भी इस सिद्धान्तके अनुयायियोंकी कमी नहीं है। वे लोग दुर्बलोंको महान् पाप समझते हैं और उत्तरोत्तर सशक्त बनना अपना परम धर्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विचारवान् बिना किसी प्रकारका आगा-पीछा [illegible] इस सिद्धान्त तुरन्त [illegible] किसी प्रकारका सन्देह नहीं करेगा [illegible] इसके समर्थन और [illegible] इस पर दया और [illegible] अधिकार रखते [illegible] है इस [illegible] और [illegible] सब [illegible] है। [illegible] है [illegible] है प्रत्येक [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

देगा। कुछ लोग केवल संग साथके विचारसे ही मादक द्रव्योंका व्यवहार करने लगते हैं, पर केवल संगसाथके विचारसे ही ऐसे पदार्थोंका व्यवहार करना—जो हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके नाशक हों, जिनसे हमारे जीवनकी उपयोगिताका नाश हो और जिनसे हमारे कर्तव्योंमें बाधा पड़े—बड़ी भारी मूर्खता है। कुछ लोग कोई बड़ा काम करनेसे पहले केवल इसी लिए कोई नशा खा या पी लेते हैं कि उसकी सहायतासे उनके शरीरमें खूब फुर्ती आ जायगी और वे उस कामको शीघ्रता और उत्तमतासे कर सकेंगे। पर इस बातका विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितनी शीघ्रता और उत्तमतासे स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्तिकी सहायताके कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमतासे किसी दूसरे पदार्थकी सहायतासे और विशेषतः मादक तरीके नाशक पदार्थोंकी सहायतासे कदापि नहीं कर सकती। इन सब बातोंके अतिरिक्त नशीली चीजोंसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। शराब पीनेवालोंका जिगर सड़ जाता है, गाँजा या चरस आदि पीनेवाले पागल हो जाते हैं, अफीमखोरोंकी आँतें बेकाम हो जाती हैं और भाँगका आँखों पर बहुत ही नाशक प्रभाव पड़ता है। संसारके जितने मादक पदार्थ हैं, वे सब विष हैं और विष सदा हमारे शरीरके शत्रु ही प्रमाणित होंगे, उनसे किसी प्रकारके हित या कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

खान पानके विचारके अन्तर्गत भांग और मादक पदार्थ आदि छोड़ देनेके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं जिनका ध्यान रखना स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि जहाँ तक हो सके मनुष्यको सादा, सूखा और हलका भोजन करना चाहिए। इस सम्बन्धमें यह बात सबसे अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठनमें उन्हीं पदार्थोंसे सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं। शेष सब पदार्थ चाहे उन्हें कितना ही अधिक पौष्टिक क्यों न समझें हमें कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। वे तो एक मार्ग हमारे शरीरमें केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्गसे निकल जाते हैं हमारे शारीरिक संगठनमें उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। हम पचा सेर खुराक केवल पौनेसेर उतना

[illegible] नहीं हो सकता, जितना पाव सेर या आध सेर दूधके पच [illegible] होता है। अतः केवल बल-वृद्धि आदिके विचारसे तरह तरहके पौष्टिक पदार्थोंको बराबर उदरस्थ करते रहनेका फल उल्टा ही होता है। हलके भोजनका विधान इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजनसे पाचन-शक्तिका नाश होता है और अग्नि मन्द पड़ जाती है। पूरियों और पकवानोंकी अपेक्षा रोटियाँ सहजमें पच जाती हैं और इसी लिए उनसे हमें अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन रूखा भी होना चाहिए। घी, मक्खन, पकवान और हलुए आदिसे भी पाचन-शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ-पूरी खानेवाले भोजनके समय एक बरतन घर पाँच पूरियोंसे अधिक नहीं खा सकते, पर सूखी रोटियाँ अथवा भूने हुए दाने खानेवाले उनसे चौगुना और पचगुना भोजन कर जाते हैं। उनके भोजनकी केवल मात्रा ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उनसे होनेवाले लाभका मान भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। रूखा भोजन करनेवाले लोग रूखा खूब नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खानेवाले दुर्बल होते हैं। तरह तरहके मसालों आदिका भी कभी व्यवहार न करना चाहिए, क्योंकि उनके संयोगसे खाद्य पदार्थोंके स्वाभाविक गुणोंका नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने स्वाभाविक स्वरूपसे ही अच्छा जिनमें बहुत ही थोड़ा परिवर्तन हुआ है। किसी पदार्थके प्राकृतिक स्वरूपमें जितना ही परिवर्तन किया जायगा उसके गुणोंका [illegible] भी होगा। [illegible] हुए [illegible] [illegible] [illegible]

जल और वायु।

जीवमात्रको अपने जीवनकालमें जिस पदार्थकी जितनी अधिक आवश्यकता पड़ती है प्रकृतिने वह पदार्थ उतनी ही अधिक मात्रामें उत्पन्न और संग्रह करके पहलेसे ही रख दिया है। जीवमात्रके लिए वायु अधिक मात्रामें और परम आवश्यक वायु होती है। यह वायु संसारमें सब पदार्थोंसे अधिक मात्रमें है और बिना किसी प्रकारके प्रयास या व्ययके सब जगह मिल सकती है। यही नहीं बल्कि प्रकृतिने ऐसी योजना कर रक्खी है कि जल, थल, आकाश, पृथिवी, सभी स्थानोंमें आपसे आप पहुँच जाती है। प्रत्येक जीवको कुछ न कुछ वायुकी आवश्यकता होती है, और यदि कोई विशेष प्रतिबन्ध न हो तो उसके लिए प्रत्येक स्थानमें वायु पहुँच ही जाती है। परम आवश्यक और आवश्यकताके विचारसे सर्वाधिक पदार्थोंमें वायुका स्थान प्रथम है। हजारों लिए जीवोंके लाख कलाएँ आ सकते हैं, जो हजारों मिल मिल पार्थ खाते हैं, पर वायुके अभिप्राय बंद मकानमें कोई ऐसी चीज है, जिसकी आवश्यकता उन हजारों जीवोंको पड़ती है तो वह जल ही है। पृथिवी यही नहीं अपनी अभिव्यक्ति इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बीमारियाँ उन्हें दूर करनेमें कभी समर्थ हो सकती हैं? कदापि नहीं। उनकी आवश्यकता तो केवल स्वच्छ और पवित्र हवा ही पूरी कर सकती है।

पाचनशक्तिसम्बन्धी दोषोंको दूर करनेके लिए भी स्वच्छ वायु रामबाण ही है। इसका प्रमाण आपको गाँव देहातमें मिलेगा। जो लोग दिनभर मैदानमें जितनी ही देर रहते हैं उनकी पाचनशक्ति उतनी ही अधिक होती है। [illegible] कहने-का [illegible] लोग इतना अधिक भोजन पचाते हैं जितना हम [illegible] भी नहीं पचा सकते। जो लोग सदा खुली हवामें रहते हैं, उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति बिना किसी प्रकारके परिश्रम या व्यायामके ही बढ़ जाती है। खुली हवाके सेवनसे रक्त शुद्ध होता है और रक्तसंचार भी बढ़ जाता है। रक्त शुद्धि और रक्त-संचार [illegible] सभी अंगों पर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पर क्या मच्छड़ोंके डंक और उनके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे डरनेवाले लोगोंने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक बार मच्छड़ोंने जाकर अजाह मियाँसे फरियाद की थी कि सरकार, हवा हमें बहुत दिक करती है, वहाँ ठहरने नहीं देती। अजाह मियाँने जब हवाको बुलवाया तो मच्छड़ वहाँसे भी भाग गये। हवाके वहाँसे चले जाने पर मच्छड़ फिर लौटे हुए अजाह मियाँके पास पहुँचे। उस बार अजाह मियाँने मच्छड़ोंको बहुत फटकारा और कहा कि फैसला तभी हो सकता है जब मुद्दई और मुद्दालेह दोनों मौजूद हों, जब तुम हवाके जाने पर यहाँ ठहरते ही नहीं, तब फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ? यदि मच्छड़ोंके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न करनेवाले लोगियों और वैद्यों तथा मच्छड़ोंके डंकसे बचनेकी इच्छा रखनेवाले दीक्षितोंने यह किस्सा न सुना हो, तो अब सुन लें और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अब समझ लें कि मच्छड़ोंको दूर करनेका सबसे सहज उपाय है—बढ़िया टट्टी और लेप हवा। भगवान ने ऐसे वनस्पति जिनसे हवा सब तरहसे बढ़िया हवा बनती हो। फिर क्या मजाल है मच्छड़ तुम्हारे काटे या दुमदार [illegible] अपनी लेपी करे।

[illegible]

[illegible] लिए अपने देहाती मकानोंमें तो अवश्य पहुँच जाते हैं; पर नगरमें पड़े हुए [illegible] के कारण वे देहातोंमें होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे [illegible] भी प्रयत्न करें तो बड़ी बड़ी पौष्टिक औषधोंकी अपेक्षा कहीं [illegible] पौष्टिक पदार्थोंसे बहुत विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं [illegible] देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि [illegible] उनसे वंचित रहनेको बड़ा भारी पाप कहा है।

[illegible] लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि [illegible] स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर [illegible]। रातके समय आपको नगरोंके अधिकांश मकानोंकी खिड़कियाँ और [illegible] आदि बन्द ही मिलेंगे, चाहे उनके भीतर रहनेवालोंको कितना ही कष्ट [illegible] न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाड़े बन्द कर लेते हैं और [illegible] या ओढ़नेके अन्दर मुँह ढँक कर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या [illegible] अधिकसे अधिक कोठरीकी हवा साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी [illegible] साँस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सरदीमें छः सात महीने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गर्मीके दिनोंमें भी ओस और हवासे बचनेके लिए गलेको छाता लगाकर सड़कों पर चलते और मफलरियाँ लगा कर सोते हैं। खुली हवामें सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। [illegible]

[illegible]

[illegible] लिए अपने देहाती मकानोंमें तो अवश्य पहुँच जाते हैं; पर नगरमें पड़े हुए [illegible] के कारण वे देहातमें होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे [illegible] भी प्रयत्न करें तो बड़ी बड़ी पौष्टिक औषधोंकी अपेक्षा कहीं [illegible] पौष्टिक पदार्थोंसे बहुत विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं [illegible] देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि [illegible] उनसे वंचित रहनेको बड़ा भारी पाप कहा है।

[illegible] अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि [illegible] स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर [illegible] हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकांश मकानोंकी खिड़कियाँ और [illegible] आदि बन्द ही मिलेंगे, चाहे उनके भीतर रहनेवालोंको कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाड़े बन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढ़नेके अन्दर मुँह ढँक कर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या ओढ़नेके अधिकसे अधिक कोठरीकी हवा साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामें साँस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सालमें छः सात महीने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवासे बचनेके लिए रातको छाता लगाकर सड़कों पर चलते और मसहरियाँ लगा कर सोते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना बहुत ही हानिकारक है।

[illegible] अपने [illegible] देशमें [illegible] सोनेके समय मकानकी सारी खिड़कियाँ और दरवाजे [illegible] और भी अधिक [illegible]। [illegible] खुलें [illegible] [illegible] दरवाजे [illegible] गन्दी [illegible] और [illegible] कुछ [illegible] क्या [illegible] कारण [illegible] [illegible] खुली दिनके [illegible] अब चाहे [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] भी पूरा हो जाता है; पर हाँ यदि आप गन्दी और विषाक्त हवाके [illegible] ही किवाड़ बन्द करते हों तो बात दूसरी है। आपका स्वास्थ्य बनाये रखने और सुधारनेके लिए साफ हवाकी आवश्यकता है; आप इस बातकी कभी चिन्ता न करें कि यह साफ हवा कितनी ठंडी है। बहुत तेज जाड़ा पड़ने पर आप यदि पूरी खिड़की न खोल सकें तो आधी अथवा थोड़ीसी अवश्य खोल दें; क्योंकि बहुत तेज ठंडकसे सब प्रकारके दूषित कीटाणुओं आदिका नाश होता है।

इस खुली हवामें रहनेका अभ्यास करो, तुम्हें कभी कोई रोग न होगा। यही नहीं बल्कि उस दशामें तुम गन्दी और बन्द हवामें थोड़ी देरतक भी न रह सकोगे। अभी हालमें जब कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुवकी ओर गये थे तब वहाँके एक टापूमें उनका जहाज ठहरा था। वहाँके कुछ जंगली लोग मल्लाहोंके साथ जहाज पर चले आये और थोड़ी देरतक उनकी कोठरियोंमें रहे। उनमें से कइयोंमें उन्हें बेतरह खाँसी आने लगी, कइयोंमें दर्द होने लगा और उनमेंसे कइयोंको बुखार भी आने लगा। पुनश्च पुनश्च खुली हवामें रहनेके कारण वे उनके इतने अभ्यस्त हो गये थे कि दस पाँच मिनिट भी गन्दी हवामें रहकर वे उनके उपद्रवोंसे न बच सके।

व्यायाम।

अब हम स्वास्थ्य-सम्बन्धी [illegible] विषयोंसे कुछ [illegible] पुनश्च [illegible] है। [illegible] दूध और [illegible] अतिरिक्त मनुष्यकी [illegible] बहुत ही आवश्यक है। [illegible] उपयोगिता [illegible] है कि [illegible] किसी प्रकार [illegible] हमेशा [illegible] होता [illegible] बाते [illegible] रखने [illegible] अपने [illegible]

दंड पेलना, बैठकें करना और मुगदल फेरना कहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल बना
नेमें बहुतसे रुपये लगानेकी अपेक्षा अखाड़े और व्यायामशालायें बनानेमें थो
रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चंगा करनेका प्रयत्न व्य
है; प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिससे रोगका मूल ही नष्ट हो जाय, उसे उत्प
होने, बढ़ने और फैलनेका अवसर ही न मिले। जड़ छोड़ कर पेड़ काटना कभ
लाभदायक नहीं हो सकता क्योंकि जड़ फिर पनपेगी, पेड़ फिर उगेगा। बल्
नहीं बल्कि उसके बीज चारों ओर गिरकर और भी नये पेड़ उत्पन्न करेंगे
अपने शरीररूपी भूमिको रोगरूपी इसके जमने योग्य ही न होने दो, और पह
लेसे जो रोग उत्पन्न हों उनका समूल नाश करो, इसीमें तुम्हारा, तुम्हारे
जातिका, तुम्हारे देशका और समस्त संसार तथा सम्पूर्ण-जातिका कल्या
है। एवमस्तु।